दसधम्मसारो

(दशधर्मसार)

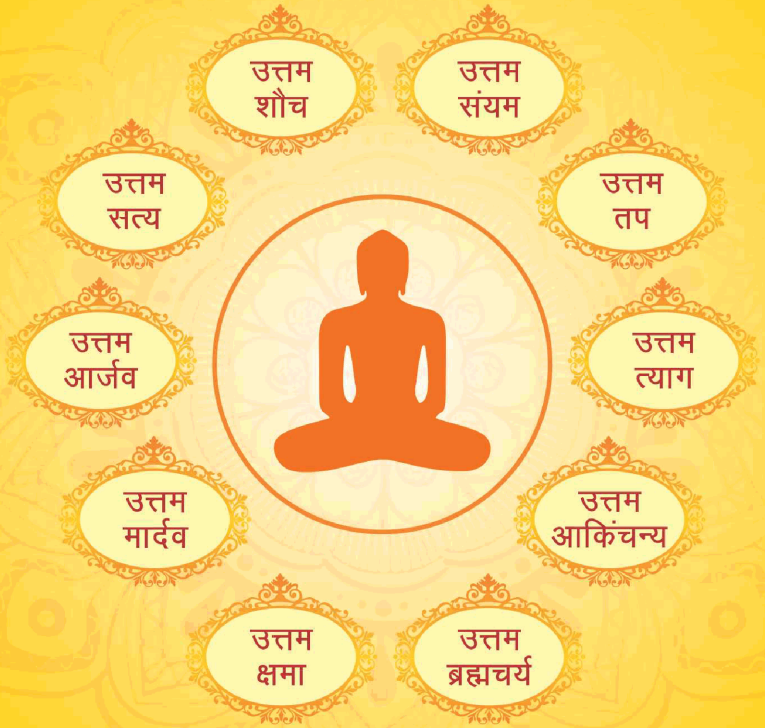

– प्रो. डॉ. अनेकान्त जैन

पावन स्मृति

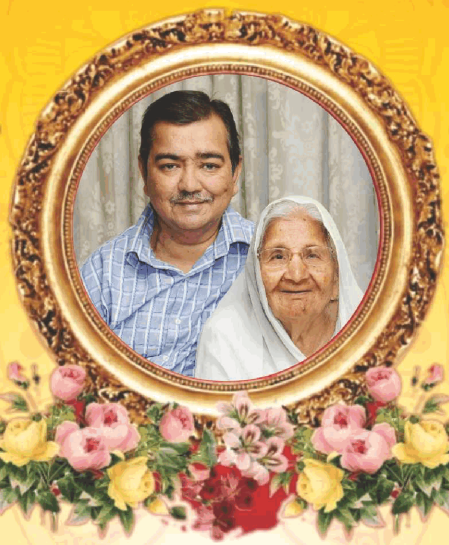

मेरी 96 वर्षीय नानी जी आदरणीय सोहनी देवी जी ने दिनांक 30 जून 2019 को अष्टापद तीर्थ पर आर्यिका दीक्षा लेकर दिनांक 1 जुलाई 2019 को सल्लेखना पूर्वक चारों प्रकार के आहारों का त्याग करके साम्य भाव से पंचपरमेष्ठी के स्मरण के साथ समाधि प्राप्त की। दीक्षा के उपरांत उनका नाम आर्यिका अमरमति माताजी हो गया था। इनके पुत्र मेरे मामा जी श्री दिनेश सेठी का भी देहांत दिनांक 26 जनवरी 2020 को शांत परिणामों से हुआ।

वर्ष 2018 के भादों के महीने में आप दोनों ने सैनिक फॉर्म, नई दिल्ली में स्थित शांतिनाथ जिनालय में दशलक्षण पर्व पर दसों दिन प्रो. अनेकांत जैन तथा श्रीमती रुचि जैन के प्रवचनों का अस्वस्थता के बाद भी कुर्सी पर बैठकर बहुत एकाग्रता पूर्वक श्रवण करके धर्म ध्यान किया था। आप दोनों की पावन स्मृति में इस ग्रंथ का प्रकाशन हो रहा है।

स्वस्तिका जैन
प्रोजेक्ट मैनेजर

आयरिय-अणेयंतकुमारजइणेण विरइय -

दसधम्मसारो

(दशधर्मसार)

लेखक

प्रो. अनेकान्त कुमार जैन

(युवा राष्ट्रपति सम्मान से सम्मानित)

सम्पादक

डॉ. अरिहन्त कुमार जैन

प्रकाशक

जिन फाउण्डेशन

एवं

'पागद-भासा', नई दिल्ली

पुस्तक : **दसधम्मसारो**
Book : **DASADAMMASĀRO**

Subject : **Prakrit & Jainism**
विषय : **प्राकृत एवं जैनविद्या**

ISBN No. : **0978-81-909686-3-8**

Writer : **Prof. Dr. Anekant Kumar Jain**
लेखक : **डॉ. अनेकान्त कुमार जैन, नई दिल्ली**

संपादक : **डॉ. अरिहन्त कुमार जैन, मुम्बई**
Editor : **Dr. Arihant Kumar Jain,** Mumbai

प्राप्ति स्थान :
1. **जिन फाउण्डेशन,** ए 93/7 ए, नन्दा हॉस्पिटल के पीछे, छत्तरपुर एक्टेंशन, नई दिल्ली-110074
Mo.9711397716, Email-drakjain2016@gmail.com
2. **अनेकान्त-विद्या-भवनम्,** B-23/45, P-6, शारदा नगर कॉलोनी, खोजवां, वाराणसी-10
Mo.9450179254, Email-anekantjf@gmail.com

मूल्य : **50/-** (पुनः प्रकाशन हेतु)

© लेखकाधीन

प्रथम संस्करण : **16.8.2020** (1000 प्रतियाँ)

प्रकाशक : **जिन फाउण्डेशन,** नई दिल्ली एवं
'पागद-भासा' (प्राकृत भाषा का प्रथम पत्रिका), नई दिल्ली

मुद्रक : **देशना कम्प्यूटर्स**
मालवीया इण्डस्ट्रियल एरिया, जयपुर (राज.)
मो. 9928517346

प्रकाशकीय

'जिन फाउंडेशन' का यह पंचम पुष्प है। इसके पूर्व ब्रिटिश म्यूजियम लन्दन की तीर्थंकरमूर्ति का 'एल्बम', 'आवश्यक निर्युक्ति' (मूल प्राकृत, संस्कृत टीका एवं हिंदी अनुवाद सहित), 'तीर्थंकर पार्श्वनाथ' तथा 'श्रमणाचार का सार' - इन ग्रन्थों का प्रकाशन काफी लोकप्रिय रहा है। हमारा उद्देश्य प्राकृत एवं जैन विद्या से सम्बंधित महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रकाशन करके उसे जन-जन तक पहुँचाना है। शास्त्रों में ज्ञान दान को सर्वश्रेष्ठ दान माना गया है। वर्तमान में प्राय: अन्य स्थानों पर तो दान की कमी नहीं देखी जाती किन्तु शास्त्र प्रकाशन में दातारों की रुचि बहुत कम देखने में आती है। वर्तमान में पूज्य संतों के प्रवचन साहित्य को तो भक्ति वशात् उत्साहित होकर प्रकाशित कर भी दिया जाता है, चाहे वह कैसा भी हो किन्तु अनेक विद्वान् मनीषियों के द्वारा श्रमपूर्वक रचित नूतन रचनाएँ, शोध पूर्ण साहित्य, प्राचीन आचार्यों द्वारा प्रणीत पांडुलिपियों का सम्पादन, अनुवाद आदि कई बार अप्रकाशित रह जाते हैं और इनकी बिक्री की कमी की आशंका से प्रकाशक भी इन्हें छापने से कतराते हैं।

अत: हमारे परिवार के सभी सदस्यों की यह भावना रहती है कि हम अपने द्रव्य का सद्-उपयोग अन्य स्थानों के साथ-साथ इस कार्य में अवश्य करें। यद्यपि प्राय: यह साहित्य भेंट में प्रदान किया जाता है फिर कुछ उदारमना लोग ऐसे भी हैं जो जिनवाणी नि:शुल्क नहीं लेना चाहते हैं, अत: वे पुण्यार्जन के रूप में जो राशि देते हैं तो उसका उपयोग आगामी ग्रन्थ अथवा उसके संस्करण के प्रकाशन में नियोजित किया जाता है।

जिन फाउंडेशन की विशेष गतिविधियों में 'पागद-भासा' पत्रिका के प्रकाशन भी महत्त्वपूर्ण हैं, जिसे नि:शुल्क प्रदान किया जाता है।

आशा है प्रस्तुत '**दसधम्मसारो**' नामक इस कृति के प्रकाशन से प्राकृत भाषा के मौलिक लेखन को बढ़ावा मिलेगा और इस कृति का भी भरपूर स्वागत होगा।

- रुचि जैन

संपादकीय

जैन संस्कृति में जितने भी पर्व व त्यौहार मनाए जाते हैं, लगभग सभी में तप एवं साधना का विशेष महत्त्व है। जैन धर्मावलम्बियों का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पर्व है – दशलक्षण पर्व। यह एक ऐसा पर्व है, जो उत्तम क्षमा से प्रारंभ होता है और क्षमावाणी पर ही सम्पन्न होकर समूचे विश्व को सर्वधर्म समभाव और विश्वशांति का संदेश देता है। इस पर्व का एक वैशिष्ट्य यह भी है कि इसका सम्बंध किसी व्यक्ति विशेष से न होकर आत्मा के गुणों से है। इसप्रकार यह इन गुणों की आराधना का पर्व है। दशलक्षण पर्व के दिनों में प्रवचनों में ऐसे लोग भी सुनने आने लगते हैं, जो वर्ष में कभी-कभार ही मंदिर आ पाते हैं। अत: यह एक ऐसा अवसर है जब श्रावकों को धर्म का प्रशिक्षण अच्छे से दिया जा सकता है। यही कारण है कि इन दिनों में साधु और विद्वान् दोनों ही अपनी शास्त्र सभा में सरल शब्दों में उत्तम क्षमादि दश धर्मों को बहुत ही व्यावहारिक भाषा में रोचकता के साथ समझाते हैं।

'**दसधम्मसारो**' नामक प्रस्तुत ग्रंथ इसी कड़ी में एक नया प्रयोग है। जैसा कि आप सभी जानते हैं प्राकृत भाषा देश की प्राचीनतम भाषा है और हमारे सभी प्राचीन जैन आगम प्राकृत भाषा में निबद्ध हैं। मुझे अतीव प्रसन्नता एवं गौरव का अनुभव हो रहा है कि महामहिम राष्ट्रपति द्वारा महर्षि बादरायण व्यास पुरस्कार से सम्मानित प्राकृत एवं जैनदर्शन के युवा मनीषी प्रो. अनेकान्त कुमार जैन ने अपनी इस मौलिक कृति के माध्यम से जनसामान्य के लिए न सिर्फ दस धर्मों की सरल व्याख्या प्रस्तुत की है बल्कि उन प्रत्येक धर्म को छंद युक्त प्राकृत गाथाओं में निबद्ध करके प्राकृत भाषा की भारतीय प्राचीन परंपरा को आगे बढ़ाने का एक अनुपम एवं सफल प्रयास किया है। ऐसा प्रयोग करके इन्होंने प्राकृत भाषा के संरक्षण एवं संवर्धन में नयी चेतना और दिशा को जागृत किया है।

प्रो. अनेकान्त जी अपनी प्रभावशाली लेखनी और रोचक एवं ओजस्वी व्याख्यान शैली के कारण विद्वानों, समाज और मीडिया की विशेष पसंद बने

हुए हैं। दस धर्मों पर आपका अपना मौलिक चिंतन है, जिसे वे पिछले 25 वर्षों से दैनिक समाचार-पत्रों, प्रवचन सभाओं और विविध मंचों के माध्यम से अभिव्यक्त कर रहे हैं। प्राकृत आगम ग्रंथों का सम्पादन करने के साथ-साथ आपने प्राकृत भाषा की प्रथम पत्रिका 'पागद-भासा' प्रकाशित करके प्राचीन प्राकृत जनभाषा को पुन: वर्तमान युगीन बोलचाल की भाषा बनाने हेतु प्रथम प्रयास किया है। प्राकृत में समाचार लिखने का यह अद्‌भुत प्रयोग है और यही कारण है कि इस माध्यम से प्राकृत भाषा के भेदों की बहुलता में एक नया भेद भी प्रचलन में आ रहा है, जिसे 'मीडिया प्राकृत' का नाम दिया जा सकता है।

पिछले कुछ वर्षों से 'पागद-भासा' के सम्पादन के क्रम में आपने नूतन सम-सामयिक प्राकृत गाथाएँ भी रची हैं। इसी क्रम में आपने दस धर्मों पर सार रूप से मात्र 15 गाथाएँ लिखकर और उसकी सारगर्भित व्याख्या करके वर्तमान समय की माँग के अनुरूप लघु ग्रन्थ का सृजन कर एक नया अध्याय जोड़ दिया है। इस ग्रन्थ में मंगलाचरण गाथा छंद में है और शेष गाथाएँ प्राकृत के उग्गाहा छंद में रची गयीं हैं। यहाँ कुछ धर्मों के विवेचन के पश्चात् रिक्त स्थानों में जो सम्बंधित गाथाएँ दी गयीं हैं, वे लेखक द्वारा नवसृजित '**जिणधम्मसयगं**' नामक ग्रन्थ से उद्‌धृत हैं।

आदरणीय प्रो. अनेकांत जी युवाओं के आदर्श एवं प्रेरणास्रोत हैं, विशेष कर हम जैसे अनेक युवा विद्वानों का बहुत मार्गदर्शन कर रहे हैं, जो प्राकृत भाषा और जैनविद्या के क्षेत्र में सेवा हेतु उत्साहित हैं। आपकी ही प्रेरणा से मुझे अंग्रेजी में '**प्राकृत टाइम्स**' इंटरनेशनल न्यूजलेटर प्रकाशन का गौरव प्राप्त हुआ है, जिसके संपादन में आपका एवं अनेक वरिष्ठ एवं विशिष्ट विद्वानों का मार्गदर्शन प्राप्त हो रहा है। ऐसे युवा मनीषी के द्वारा सरल शब्दों में दसधर्म के सार को समझाने वाला यह लघु ग्रन्थ निश्चित ही आप सभी के लिए लाभप्रद सिद्ध होगा - ऐसी आशा है। अत: इसे पढ़ें और धर्मप्रभावना हेतु इसे जन-जन तक पहुँचाएँ - ऐसी मंगल भावना है।

- डॉ. अरिहन्त कुमार जैन
पीडीएॅफ, दर्शन विभाग, मुंबई विश्वविद्यालय, मुंबई

विषयानुक्रमणिका

क्र.	विषय	पृष्ठ
1.	भूमिका	7
2.	धर्म का स्वरूप	11
3.	धर्म के दशलक्षण	13
4.	उत्तम क्षमा	14
5.	उत्तम मार्दव	16
6.	उत्तम आर्जव	18
7.	उत्तम शौच	20
8.	उत्तम सत्य	22
9.	उत्तम संयम	24
10.	उत्तम तप	26
11.	उत्तम त्याग	28
12.	उत्तम आकिञ्चन्य	31
13.	उत्तम ब्रह्मचर्य	34
14.	क्षमावाणी पर्व	36
15.	दशलक्षण धर्म आराधना	41

जियो बाहर लेकिन रहो भीतर

जीववहो अप्पवहो हिंसा ण हवइ सुद्धोवओगम्मि।
धारयदु खलु अहिंसा जीउ संसारम्मि ठिदो अप्पम्मि।।

जीववध आत्मवध ही है, (इसलिए सभी जीवों की हिंसा से बचो) शुद्धोपयोग में हिंसा नहीं होती है, इसलिए अहिंसा (शुद्धोपयोग) को अवश्य धारण करो और जियो भले ही संसार में लेकिन रहो अपनी आत्मा में अर्थात् जियो बाहर लेकिन रहो भीतर।

- (जिणधम्मसयगं, गाथा 42)

भूमिका

आत्मानुभूति का महापर्व है दशलक्षण

मंगलाचरण

णमो हु सव्वजिणाणं आयरियोवज्झायसाहूणं य।
णमो य पज्जुसणाणं णमो दसलक्खणपव्वाणं।। 1।।

सभी जिनेन्द्र भगवन्तों को मेरा नमन, सभी आचार्यों, उपाध्यायों और साधुओं को मेरा नमन, पर्युषण को नमन और दशलक्षण पर्वों को नमन।

जैन परंपरा के लगभग सभी पर्व हमें सिखाते हैं कि हमें संसार में बहुत आसक्त होकर नहीं रहना चाहिए। संसार में रहकर भी उससे भिन्न रहा जा सकता है जैसे कमल कीचड़ में रहकर भी उससे भिन्न होकर खिलता है। यह कार्य अनासक्त भाव से रहने की कला जानने वाला सम्यग्दृष्टि साधक मनुष्य बहुत अच्छे से करता है। यह पर्व भेदविज्ञान करना सिखाता है, वह कहता है कि पाप से बचने का और कर्मबंधन से छूटने का सबसे अच्छा उपाय है – भेदविज्ञान की दृष्टि।

मूलाचार, भगवती आराधना आदि आगमों में श्रमण के दस स्थितिकल्पों में दसवें कल्प का नाम प्राकृत में पज्जोसवणा लिखा है, इसका अर्थ पर्युषणकल्प है, जिसका अभिप्राय है वर्षाकाल में चार महीने भ्रमण त्याग कर एक स्थान पर वास करना। अतः पर्युषण का अर्थ चातुर्मास से लगाया जा सकता है। इसलिए इस दौरान जो भी पर्व आते हैं, उन्हें पर्युषण पर्व कहा जा सकता है। श्वेताम्बर सम्प्रदाय में भी आठ दिन आत्मा की आराधना करने वाले इस पर्व को पर्युषण पर्व ही कहा जाता है। दशलक्षण भी इन्हीं चातुर्मास में आते हैं अतः उसे भी उपचार से पर्युषण पर्व कह दिया जाता है। पर्युषण का शाब्दिक अर्थ है – **परि आ समंतात् उष्यन्ते दह्यन्ते पापकर्माणि यस्मिन् तत् पर्युषणम्** अर्थात् जो आत्मा में रहने

वाले कर्मों को सब तरफ से तपाये या जलाये, वह पर्युषण है। दशलक्षण पर्व में दस दिन तक आत्मा के दश धर्मों की उपासना की जाती है।

दशलक्षण पर्व आत्मा तथा उसे ज्ञान दर्शन चैतन्यस्वभावी मानने वालों के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। जैन परंपरा में इन दिनों श्रावक-श्राविकाएँ, मुनि-आर्यिकाएँ (जैन साध्वी) पूरा प्रयास करते हैं कि आत्मानुभूति को पा जाएँ, उसी में डूबें तथा उसी में रम जाएँ। क्षमा, मार्दव (अहंकार रहित), आर्जव (सरलता), सत्य, शौच (शुद्धि), संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य (परिग्रह का त्याग) और ब्रह्मचर्य जैसे दस धर्म शुद्धात्मा के स्वभाव हैं, किंतु हम अपने निज स्वभाव को भूलकर परभाव में डूबे रहते हैं। अंतस के मूल शुद्ध स्वभाव को प्राप्त करने के लिए ही दशलक्षण पर्व मनाया जाता है। दशलक्षण पर्व सात्त्विक जीवन शैली के अभ्यास तथा आत्मानुभूति करवाने के लिए प्रतिवर्ष भाद्र, माघ और चैत्र महीने में तीन बार आते हैं।

भाद्रपद मास का जैन परम्परा में महत्त्व ज्यादा होने से इस मास के दशलक्षण पर्व ज्यादा प्रसिद्ध हैं। यह भद्र परिणाम उपस्थित करने वाले व्रतों का महीना है। 'भद्र' पद का अर्थ कल्याण, कुशलक्षेम आदि है। 'यह अन्य सभी महीनों' का राजा है। - (मल्लिपुराण, 2/39)

जैन परंपरा में दिगंबर तथा श्वेतांबर दोनों ही कुल 18 दिनों तक पर्युषण पर्व उत्साह से मनाते हैं। श्वेतांबर संप्रदाय में यह पर्व भाद्रपद मास के कृष्णपक्ष की त्रयोदशी से भाद्रपद के शुक्ल पक्ष की पंचमी तक मनाया जाता है। पर्युषण पर्व का अंतिम दिन संवत्सरी कहलाता है। भाद्रपद शुक्ल पंचमी से भाद्रपद शुक्ल चतुर्दशी तक दस दिन यह पर्व दिगंबर संप्रदाय में विशेष रूप से मनाते हैं, जिसे दशलक्षण महापर्व कहते हैं।

जैनदर्शन का संस्कृत का प्रथम सूत्र ग्रन्थ है - तत्त्वार्थसूत्रम्, जिसकी रचना आचार्य उमास्वामि ने प्रथम शताब्दी में की थी। इसमें दश अध्याय हैं, पर्व के दिनों में इस ग्रन्थ का विशेष स्वाध्याय अनिवार्य माना गया है।

इस पर्व की शुरुआत कब से हुई ? इस प्रश्न का उत्तर किसी तिथि या संवत् से नहीं दिया जा सकता। हम यह कह सकते हैं कि जब से आत्मा है तभी से यह पर्व है अर्थात् अनादि काल से चलने वाला यह पर्व किसी जाति संप्रदाय या मजहब से भी नहीं बँधा है। आत्मा को मानने वाले तथा उसे ज्ञान-दर्शन चैतन्यस्वभावी मानने वाले सभी लोग इस पर्व की आराधना कर सकते हैं।

लगभग पच्चीस वर्षों से मैं दशलक्षण पर्व पर विशेष प्रवचन तथा व्याख्यान हेतु देश के विभिन्न स्थानों पर लगातार जा रहा हूँ। उस दौरान कई बार ऐसा हुआ कि श्रोता कहते कि हमें बहुत ही सरल भाषा में दस धर्मों का सार बताने वाली एक छोटी-सी पुस्तक चाहिए, जो हम जैन तथा अन्य समाज में वितरित कर सकें तथा सभी को दश धर्मों से परिचित करवा सकें। मैंने अक्सर दैनिक जागरण तथा अमर उजाला आदि अनेक राष्ट्रीय स्तर के अखबारों एवं सामाजिक पत्र-पत्रिकाओं में पर्व तथा जैनधर्म दर्शन को समझाने वाले सैंकड़ों लेख लिखे हैं, उनकी प्रतिक्रिया से भी मैं लिखते रहने हेतु बहुत उत्साहित रहा; किन्तु इन सब लेखनों के बाद भी एक सरल, रोचक और माँग के अनुरूप लघु-पुस्तिका तैयार नहीं कर पाया।

अनेक वर्षों से आचार्यों के द्वारा दस धर्म विषय पर रचित गाथाएँ उनके ग्रंथों से पढ़ता आ रहा हूँ, उनका गहन स्वाध्याय भी किया। आधुनिक काल में दश धर्म विषय पर दिए और लिखे गए अनेक मुनियों आचार्यों तथा विद्वानों के प्रवचन और निबंध भी पढ़े। इन सबके बाद काफी चिंतन, मनन और मंथन हुआ, उसके फलस्वरूप दश धर्म पर प्राकृत गाथाएँ रचने का भाव बना और पूर्वाचार्यों के प्रसाद से तथा गुरुजनों एवं माता-पिता के आशीर्वाद से 'दसधम्मसारो' की रचना भी हो गई।

अभी विगत वर्ष अचानक दिल्ली के दैनिक अखबार अमर भारती के संपादक श्री अक्षयकुमारजी ने दशलक्षण के ठीक एक दिन पहले मुझसे निवेदन किया कि मैं अखबार में प्रतिदिन एक धर्म का स्वरूप सम्पादकीय

पृष्ठ पर छापना चाहता हूँ ,किन्तु आप यदि एक दिन पहले अगले दिन का लेख उपलब्ध करवा सकें तो। बस फिर क्या था, मुझे भी अपने विचारों और मन में बन रही इस पुस्तक को आकार देने का एक सशक्त बहाना भी मिल गया। मैंने इन गाथाओं पर सरल व्याख्या भी लिखना प्रारंभ कर दिया। इसी आधार पर रोज उन्हें प्रत्येक धर्म का स्वरूप आम जनता की भाषा में लिखकर भेजता रहा और वे छापते रहे। उन दिनों इन लेखों को रोज सोशल मीडिया पर शेयर भी करता रहा, सोशल मीडिया पर लोगों ने इन लेखों को खूब सराहा तो मन किया कि ज्यादा लम्बा-चौड़ा लिखने की बजाय, गाथाओं की इन्हीं व्याख्याओं को पुस्तकाकार बना कर प्रस्तुत किया जाय।

मैं दिल्ली में रोज शाम को व्याख्यान देने जाता और गाथा तथा उसके आधार पर लेख भी लिखता तो इस चिंतन मंथन के कार्य में श्रीमती रुचि अनेकांत (धर्मपत्नी) ने मेरा बहुत सहयोग दिया, वो हर बात को बारीकी से सुनती और पढ़ती, सुझाव देती, सुधरवाती तब यह प्रेस में प्रेषित हो पाता था। मेरे पूज्य पिताजी राष्ट्रपति सम्मानित वरिष्ठ मनीषी प्रो. फूलचंद जैन प्रेमीजी और विदुषी माँ डॉ. मुन्नीपुष्पा जैन ने बचपन से मुझे जो सिखाया और आज भी जो दिशा-निर्देशन और आशीर्वाद देते हैं, मैं मानता हूँ मेरी यह एक और रचना उसी का परिणाम है, बाकी सुधी पाठक तय करेंगे।

इस लघु ग्रन्थ को पुस्तकाकार रूप देकर तथा संपादन करके डॉ. अरिहन्त कुमार जैन ने सहयोग दिया है। डॉ. धर्मेन्द्रजी जैन तथा डॉ. इन्दु जैन ने भी अनेक सुझाव दिये। अत: सभी के प्रति हृदय से आभार। दिनेश जैन (देशना कम्प्यूटर्स), जयपुर को सुन्दर मुद्रण हेतु धन्यवाद।

16.8.2020
नई दिल्ली

- प्रो. डॉ. अनेकांत कुमार जैन
आचार्य एवं अध्यक्ष - जैनदर्शन विभाग
श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रिय
संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली-16

धर्म का स्वरूप

धम्मसरूवं

दंसणमूलो धम्मो वत्थुसहावो खलु जीवरक्खणं ।
चारित्तं सुदं दया धम्मो य सुद्धवीयरायभावो।।2।।

दर्शन का मूल धर्म है, वस्तु का स्वभाव धर्म है, जीवों की रक्षा ही धर्म है, चारित्र धर्म है, श्रुत धर्म है, दया धर्म है और विशुद्ध वीतरागभाव धर्म है - ऐसा जानो।

धर्म की अनेक परिभाषाएँ शास्त्रों में प्राप्त होती हैं जैसे दर्शन का मूल धर्म है, वस्तु का स्वभाव धर्म है, जीवों के प्रति अहिंसा धर्म है, चारित्र धर्म है, श्रुत धर्म है, दया धर्म है और विशुद्ध वीतरागभाव धर्म है आदि। इनके अलावा भी कहा गया है कि जिसे धारण किया जाये वह धर्म है या जो संसारी प्राणियों को दु:ख से निकाल कर उत्तम सुख में स्थापित कर दे - वह धर्म है। इनके अलावा और भी अनेक परिभाषाएँ, लक्षण आदि उपलब्ध हो सकते हैं।

ये सभी व्याख्याएँ अलग-अलग सन्दर्भों में विषय की मुख्यता से शास्त्रों में बताई गईं हैं। आज हमें विचार इस बात का करना है कि वर्तमान में हमारे लिए धर्म की कौन-सी परिभाषा हमें झकझोरने वाली है। मुझसे पूछा जाय तो मैं एक ही बात कहूँगा कि 'जो आज तक नहीं किया वह धर्म है'। यह लक्षण सुनकर हो सकता है आप चौंक जाएँ। अरे ये कैसा लक्षण हुआ? हमने आज तक क्या नहीं किया? पूजा की, अभिषेक किया, तीर्थ किया, दान दिया आदि न जाने क्या-क्या किया। कठोर तप और व्रत आदि भी किये, फिर भी आप कह रहे हैं कि 'जो आज तक नहीं किया वह धर्म है' तो क्या यह सब अधर्म था? अरे, नहीं भाई, मैंने जो ये लक्षण आपको बताया उसको समझना इतना आसान नहीं है और घबड़ाने की जरूरत भी नहीं है। मैं तो बस इतना जानता हूँ कि अनादि काल से मैं इस संसार में भटक कर दु:खी हो रहा हूँ, अनेक जन्मों में दु:ख

मुक्ति के अनेक उपाय भी किये हैं, जैसा कि आप धर्म के नाम से गिनवा रहे हैं, लेकिन आज भी मैं इसी भव-भ्रमण में हूँ और आपके सामने दशधर्म की व्याख्या करने का प्रयास कर रहा हूँ, इससे ये पता चलता है और सिद्ध होता है कि हमने आज तक धर्म के नाम पर बहुत कुछ अवश्य किया है लेकिन वास्तविक धर्म नहीं किया, क्योंकि जिन्होंने वास्तव में सही रीति से धर्म किया है, वे आज सिद्धालय में विराजमान हैं, हमारे आपके साथ नहीं हैं। इससे पता लगता है कि हमने जो धर्म किया उसमें या तो उसका सही स्वरूप समझने में भूल की या सही पालन में भूल की तभी तो आज तक हमारी यह दशा है। धर्म का फल मोक्ष है और वह कई जन्मों की लाख कोशिशों के बाद भी हमें अभी तक नहीं मिला है इसका सीधा सरल मतलब मैंने यह निकाला है कि 'जो आज तक नहीं किया वह धर्म है'।

वास्तव में धर्म के मामले में हमें अपने प्रति ईमानदार होने की बहुत आवश्यकता है, यह दशलक्षण पर्व इसी तरह के आत्मानुसंधान (Self research) के लिए जीवन में आते हैं। हम किसी मत, संप्रदाय, पंथ के पोषण में और लोकेषणा के चक्कर में अपना यह दुर्लभ मनुष्य भव बर्बाद नहीं कर सकते क्योंकि यह दुर्लभ मनुष्य भव, भव के अभाव करने के लिए मिला है, अन्य कार्य अब उतने महत्त्वपूर्ण नहीं हैं।

वर्तमान में हमें सर्वप्रथम आगम शास्त्रों के स्वाध्याय के माध्यम से वास्तविक धर्म का स्वरूप समझने का प्रयास करना चाहिए। 'रयणसार' में आचार्य कुन्दकुन्द ने बहुत सुन्दर कहा है कि अध्ययन ही ध्यान है, जिससे पंचेन्द्रिय और कषाय का संयम हो जाता है, अतः पंचमकाल में हमें भगवान् की वाणी का अधिक से अधिक अभ्यास करना चाहिए।

उत्तम क्षमादि धर्मों की आराधना भले ही जैनधर्म के अनुयायी ही करते हों, लेकिन आत्मा के इन स्वाभाविक धर्मों की आराधना उन सभी को करने योग्य है, जो आस्तिक हैं और आत्मा के अस्तित्व को स्वीकारते हैं।

– जैनधर्म : एक झलक, पृ. 39

धम्मस्स दसलक्खणं

धम्मस्स दसलक्खणं खमा मद्दवज्जवसउयसच्चा य।
संजमतवचागाकिंयण्हं बंभं य जिणेहिं उत्तं।।3।।

जिनेन्द्र भगवान् ने धर्म के दस लक्षण कहे हैं - उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम शौच, उत्तम सत्य, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिंचन्य और उत्तम ब्रह्मचर्य।

धर्म के दशलक्षण

जैनधर्म में दशलक्षण पर्व पर दस दिन तक आत्मा के दश धर्मों की विशेष उपासना की जाती है इसलिए इन्हें धर्म के दशलक्षण कहते हैं। यहाँ आराधना प्रत्येक दिन प्रत्येक धर्म की एक साथ की जाती है। उसका कारण यह है कि ये दश धर्म जब आत्मा में प्रकट होते हैं तब एक साथ ही प्रकट होते हैं क्रमशः नहीं। व्यवहार से स्वरूप समझने के अभिप्राय से प्रत्येक दिन क्रम से एक-एक धर्म का स्वरूप समझा और समझाया जाता है और उसकी विशेष पूजा की जाती है। आचार्य उमास्वामि विरचित तत्त्वार्थसूत्र ग्रन्थ के नवमें अध्याय के छठे सूत्र में इन दश धर्मों के नाम इस प्रकार बताये हैं -

उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिञ्चन्य-ब्रह्मचर्याणिधर्मः।

यहाँ क्षमा आदि दशधर्मों में जो 'उत्तम' शब्द लगा है वह सम्यग्दर्शन का सूचक है। सम्यग्दर्शन न हो और कितना भी ज्ञान हो जाये, कितनी भी तपस्या, व्रत, उपवास करे - वह सब व्यर्थ हो जाता है। अतः सम्यग्दर्शन पूर्वक ही दशधर्मों की आराधना अभीष्ट फल को दिलवाती है।

आगे के अध्यायों में हम इन्हीं दश धर्मों का क्रम से विशेष अर्थ समझेंगे।

प्रथम दिवस (भाद्र शुक्ला पंचमी)

उत्तम-खमा

खमा हु अप्पसहावो कोहाभावे य जायइ अप्पम्मि।
मिच्छत्तस्साभावे जहा य सम्मत्तं हवइ अप्पम्मि।। 4।।

क्षमा आत्मा का स्वभाव है, वह क्रोध कषाय के अभाव स्वरूप आत्मा में उत्पन्न होता है। जैसे मिथ्यात्व के अभाव में सम्यक्त्व आत्मा में प्रगट होता है।

उत्तम क्षमा

दशलक्षण पर्व का पहला दिन उत्तम क्षमा का होता है। उत्तम शब्द से तात्पर्य है सम्यग्दर्शन अर्थात् सच्चा विश्वास। यह सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र इन त्रिरत्नों में पहला रत्न कहलाता है। मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति के लिए यह पहली शर्त है। इसके बिना मोक्षमार्ग प्रारंभ ही नहीं होता है। आत्मा में जब क्रोधरूपी विभाव का अभाव होता है, तब उसका क्षमा स्वभाव प्रगट होता है।

हमने हमेशा से क्रोध को स्वभाव माना है, यह हमारी सबसे बड़ी भूल है। हम अक्सर कहते हैं कि अमुक व्यक्ति क्रोधी स्वभाव का है। जबकि क्रोध विभाव है स्वभाव नहीं। स्वभाव है क्षमा जो आत्मा का स्वाभाविक धर्म है।

जैन परम्परा में प्रत्येक धर्म की व्याख्या निश्चय (अध्यात्म) और व्यवहार इन दो नयों के आधार पर की जाती है। अध्यात्म की दृष्टि से क्षमा स्वभाव वाली आत्मा के आश्रय से पर्याय में क्रोध रूप विकार की उत्पत्ति नहीं होना ही क्षमा है और व्यवहार की दृष्टि से क्रोध का निमित्त मिलने पर भी उत्तेजित नहीं होना, उनके प्रतिकार रूप प्रवृत्ति के न होने को ही उत्तम क्षमा कहा जाता है।

दूसरों की गलती की सजा खुद को देने का नाम क्रोध है। हमारे क्रोध का सबसे बड़ा कारण है कि अज्ञानता के कारण हम दूसरों को अपने इष्ट या अनिष्ट का कारण मानते हैं, दूसरों से ज्यादा अपेक्षाएँ करते हैं। तत्त्वज्ञान के अभ्यास से जब हम यह समझने लगेंगे कि अपने अच्छे या बुरे के लिए हमारे खुद के किये कर्म दोषी हैं, दूसरा तो निमित्तमात्र है, तब हमारे जीवन में क्रोध की कमी आना शुरू हो जाएगी और क्षमा स्वभाव प्रगट होना शुरू हो जाएगा।

हम चाहें कितना भी तर्क कर लें लेकिन अंत में निष्कर्ष यही निकलता है कि क्रोध दु:खरूप है और क्षमा सुखरूप।

आज दिल के रंजोगम चलो मिलकर साफ कर दें,
जीयेंगे कब तक घुटन में अब सभी को माफ कर दें।
माँग लें माफी गुनाहों की जो अब तक हमने किए,
अब नहीं कोई शिकायत दुनिया को ये साफ कर दें।।

दोष गैरों के देखकर ही उम्र गुजार दी,
इनयात खुद पर भी नजरें हम आज कर दें।
आईना ही करते रहे साफ हम तमाम उम्र,
चलो धूल चेहरे की भी अब साफ कर दें।।

– (स्वरचित)

कोहेण वि य मरिज्जदि, खंतिखम्मेण वि अवस्स मरिज्जदि।
जदि दोहिं वि मरिस्सदि, वरं हि खंतिखम्मेण मरिदव्वं।।

क्रोध के होने पर भी निश्चित मरता है, क्रोध के न होने पर शांति और क्षमा में भी अवश्य मरता है। यदि दोनों परिस्थिति होने पर भी मरण होगा, तो उत्तम है (व्यक्ति को) शांति और उत्तम क्षमा पूर्वक ही मरण करना चाहिए। ***– (जिणधम्मसयगं , गाथा 94)***

द्वितीय दिवस (षष्ठी)

उत्तम-मज्जवं

मज्जवप्पसहावो य माणाभावे य जायइ अप्पम्मि।
मिच्छत्तस्साभावे जहा य सम्मत्तं हवइ अप्पम्मि।। 5।।

मार्दव आत्मा का स्वभाव है, वह मान कषाय के अभाव स्वरूप आत्मा में उत्पन्न होता है जैसे मिथ्यात्व के अभाव में सम्यक्त्व आत्मा में प्रगट होता है।

उत्तम मार्दव

मृदुता का भाव मार्दव कहलाता है। उत्तम मार्दव का अर्थ है सच्ची श्रद्धा से युक्त मृदुता। यह धर्म आत्मा में मान कषाय के अभाव स्वरूप प्रगट होता है। जिस प्रकार क्रोध आत्मा का स्वभाव नहीं है उसी प्रकार मान भी आत्मा का स्वभाव नहीं है। निंदा के निमित्त से आत्मा में क्रोध की उत्पत्ति होती है और प्रशंसा के निमित्त से आत्मा में मान उत्पन्न हो जाता है। दोनों ही स्थिति खराब है।

क्रोधी और मानी में सबसे बड़ा फर्क यह है कि जिस निमित्त से क्रोध उत्पन्न होता है क्रोधी उसे दूर भगाना चाहता है किन्तु जिस निमित्त से मान उत्पन्न होता है मानी उसे रखना चाहता है। मान के कारण व्यक्ति दूसरों को नीचा और स्वयं को ऊँचा दिखाना पसंद करता है। इसके लिए वह दूसरे की निन्दा करता है और खुद की प्रशंसा खुद ही करता फिरता है। स्थिति प्रतिकूल हो तो क्रोध उत्पन्न हो जाता है और अनुकूल हो तो मान उत्पन्न हो जाता है।

शास्त्रों में मान को महाविष रूप कहा गया है। मनुष्य ज्ञान, पूजा, कुल, जाति, बल, ऋद्धि, तप और रूप का घमंड करता है और दूसरों को नीचा दिखाता है। मान मनुष्य को कुछ सीखने नहीं देता। मान कषाय से

युक्त मनुष्य को यह पता नहीं होता कि वह मानी है, यह दूसरों को पता लगता है जो उनसे पीड़ित होते हैं। तत्त्वज्ञान से मान दूर हो जाता है किन्तु अज्ञानी को ज्ञान का ही मद हो जाता है।

पारिवारिक और सामाजिक दृष्टि से भी अहंकार अधिकांश झगड़ों की जड़ में रहता है। जिस परिवार में छोटे बड़ों के मान का ध्यान रखते हैं और बड़े छोटों के मन का ध्यान रखते हैं, वहाँ कभी कलह नहीं होता। जब तक अहंकार है, तब तक आत्मा का दर्शन संभव नहीं है। जो भी वास्तव में आत्मा को जानना चाहता है, उसे 'मैं' का विसर्जन करना ही पड़ेगा।

जीने वाले ही झुकना जानते हैं,
ये हुनर मुर्दे में कहाँ मानते हैं।
हो नर तो नम्रता में सम्मान मानो,
उठते वही हैं जो झुकना जानते हैं।।

– (स्वरचित)

जब तक मान कषाय का अभाव नहीं होगा और जीवन में मृदुता का विकास नहीं होगा तब तक हम आत्मधर्म से कोसों दूर खड़े रहेंगे। उसका स्पर्श भी न हो सकेगा। विनय के बिना जीवन में धर्म की शुरुआत ही नहीं हो सकती। जिनवाणी की बात नहीं मानना भी सबसे बड़ा मद है। अतः हमें मान कषाय का अभाव करके आत्मा के स्वाभाविक मार्दव धर्म को प्रगट करने का प्रयास करना चाहिए। सुखी होने का यही उपाय है।

माणेण वि य मरिज्जदि, मज्जवेण वि खलु अवस्स मरिज्जदि।
जदि दोहिं वि मरिस्सदि, वरं मज्जवधम्मेण मरिदव्वं।।

मान के होने पर भी निश्चित मरता है, मार्दव होने पर भी अवश्य मरता है। यदि दोनों परिस्थिति होने पर भी मरण अवश्य होगा, तो उत्तम है (व्यक्ति को) उत्तम मार्दव धर्म पूर्वक ही मरण करना चाहिए। ***– (जिणधम्मसयगं, गाथा 95)***

तृतीय दिवस (सप्तमी)

उत्तम-अज्जवं

अज्जवप्पसहावो य मायाभावे य जायइ अप्पम्मि।
मिच्छत्तस्साभावे जहा य सम्मत्तं हवइ अप्पम्मि।। 6।।

आर्जव आत्मा का स्वभाव है, वह माया कषाय के अभाव स्वरूप आत्मा में उत्पन्न होता है जैसे मिथ्यात्व के अभाव में सम्यक्त्व आत्मा में प्रगट होता है।

उत्तम आर्जव

ऋजुता अर्थात् सरलता का नाम आर्जव है। सच्ची श्रद्धा सहित जो वीतरागी सरलता होती है, उसे उत्तम आर्जव धर्म कहते हैं। आत्मा में उत्तम आर्जव धर्म माया कषाय के अभाव में प्रगट होता है।

शास्त्रों में कहा गया है कि मायाचारी व्यक्ति वर्तमान में भले ही छल-कपट करके खुद को बहुत होशियार या सफल मानता फिरे, दूसरों को ठगकर बेवकूफ बनाता रहे, किन्तु इस मायाचारी प्रवृत्ति का फल तिर्यंच गति होता है अर्थात् इसके फल से मनुष्य अगले जन्म में पशु-पक्षी बनकर बहुत दुःख उठाता है। तत्त्वार्थसूत्र में सूत्र है - 'माया तैर्यग्योनस्य' (6/16) अर्थात् माया तिर्यञ्च गति का कारण है। अतः मनुष्य माया करके खुद को ठगता है और मन ही मन प्रसन्न होता है कि मैंने दूसरे को ठग लिया।

जैनदर्शन कहता है कि मनुष्य के सभी कार्य पूर्व के पुण्य उदय से सिद्ध होते हैं मायाचारिता से नहीं। छल करने वाला मनुष्य अपनी प्रामाणिकता खो देता है। आपके व्यक्तित्व पर कोई भरोसा नहीं करता। वर्तमान में मायाचारिता को एक गुण की तरह समझा जा रहा है। सरलता को वर्तमान समाज में मूर्खता कहा जाने लगा है। यह अशुभ संकेत है।

वास्तविकता यह है कि मायाचारी व्यक्ति को पूरी दुनिया टेढ़ी दिखाई

देती है, वह हमेशा सशंक और तनाव में रहता है। मन में चोर भरा हो तो पूजा, पाठ, अभिषेक, ध्यान, सामायिक से भी शांति नहीं मिल सकती क्योंकि मायाचारी यह सब भी माया कषाय के वशीभूत होकर करने लगता है। कभी-कभी तो सामान्यजन की अपेक्षा भी कुछ ज्यादा ही यह सब करता दिख जाता है। बंगला में एक कहावत है - 'ओति भक्ति चोरेन लक्खन' अर्थात् अति भक्ति चोर का लक्षण है। एक प्रसिद्ध दोहा है -

नमन नमन में फेर है, अधिक नमें बेईमान।
दगाबाज दूना नमें, चीता चोर समान।।

माया के कारण हम समाज में एक मुखौटा लगाकर जी रहे हैं। रोज मुखौटे बदलते हैं। मुखौटे पहनने के इतने आदि हो गए हैं कि हमारा असली चेहरा क्या है हम वो भी भूल चुके हैं।

सरलता आत्मा का मूल स्वभाव है और माया विभाव है। माया कषाय का जीवन में अभाव करके परम वीतरागी सरलतारूप स्वभाव प्रगट करने का सभी को प्रयास करना चाहिए।

अंदर बाहर एक हो नर वो ही है महान्।
तारे भव समुद्र से आर्जव धर्म महान्।।

- (स्वरचित)

मायाए वि मरिज्जदि, अज्जवेण वि खलु अवस्स मरिज्जदि।
जदि दोहिं वि मरिस्सदि, वरं अज्जवधम्मेण मरिदव्वं।।

माया के होने पर भी निश्चित मरता है, आर्जव होने पर भी अवश्य मरता है। यदि दोनों परिस्थिति होने पर भी मरण होगा, तो उत्तम है (व्यक्ति को) उत्तम आर्जव धर्म पूर्वक ही मरण करना चाहिए। ***- (जिणधम्मसयगं, गाथा 96)***

चतुर्थ दिवस (अष्टमी)

उत्तम-सउचं

सउचं अप्पसहावो लोहाभावे य जायइ अप्पम्मि।
मिच्छत्तस्साभावे जहा य सम्मत्तं हवइ अप्पम्मि।। 7।।

शौच आत्मा का स्वभाव है, वह लोभ कषाय के अभाव स्वरूप आत्मा में उत्पन्न होता है जैसे मिथ्यात्व के अभाव में सम्यक्त्व आत्मा में प्रगट होता है।

उत्तम शौच

दशलक्षण में प्रारंभ के चार धर्म क्रोध, मान, माया, लोभ - इन चार कषायों के अभाव स्वरूप आत्मा में प्रगट होते हैं। पहले दिन क्रोध का अभाव कर क्षमा, दूसरे दिन मान का अभाव कर मार्दव तथा तीसरे दिन माया का अभाव करके आर्जव धर्म प्रगट किया। उसी क्रम में चौथे दिन लोभ कषाय का अभाव करके शौच धर्म प्रगट किया जाता है।

शुचेर्भावः शौचम् अर्थात् शुचिता या पवित्रता का नाम शौच है। जीवन में जैसे-जैसे लोभ कम होने लगता है, वैसे-वैसे शुचिता प्रगट होने लगती है। लोभ की एक बड़ी विशेषता यह है कि लोभी व्यक्ति जरूरत पड़ने पर क्रोध को दबा लेता है, मान को भी भूल जाता है और माया को भी रोक देता है...बस काम बनना चाहिए। दृढ़ लोभी कभी लक्ष्य से हटते नहीं हैं। दृढ़ लोभी की साधना किसी दृढ़ योगी से कम नहीं होती।

इसलिए अकेले लोभ का अभाव शौच नहीं है, बल्कि क्रोध, मान, माया, लोभ - इन चारों कषायों के अभाव का नाम शौच या पवित्रता है। लोभ को पाप का बाप कहा गया है क्योंकि इसके वशीभूत होकर ही मनुष्य पाप करता है।

यह लोभ ही है जो मनुष्य पाखंड में भी धर्म मानने लगता है। भगवती

आराधना ग्रंथ में लिखा है कि लोभ करने पर भी पुण्य से रहित मनुष्य को कुछ नहीं मिलता और पुण्यवान को बिना लोभ के भी सब कुछ सहज मिल जाता है। – (भ.आ.1436)

लोभ के कारण हम अपनों से ही बैर कर बैठते हैं। जो धर्म हमें लोभ त्यागने की शिक्षा देता है, उस धर्म की पालना भी हम यदि किसी लौकिक लोभ के वशीभूत होकर करें तो यह कितना विसंगतिपूर्ण होगा ? यह तथ्य किस दिन समझ में आएगा कि लौकिक कामनाओं और लोभ के उद्देश्य से की गई भक्ति भी बंध का ही कारण है।

हम देखते हैं कि धर्म स्थानों पर भी लौकिक लोभियों की ही भीड़ बढ़ रही है। कोई पुत्र की कामना से, कोई विवाह की कामना से, कोई धन-सम्पत्ति की कामना से तो कोई नौकरी-व्यापार की कामना से धर्म में संलग्न है। जिस धर्म में जिन कामनाओं के त्याग की शिक्षा दी जाती है, हम उसी धर्म में उन्हीं कामनाओं की पूर्ति के लिए शरणागत होते हैं। यह विडम्बना नहीं तो और क्या है ? मेरा मानना है कि समाज में जब तक धर्म का मानदंड मात्र लौकिक समृद्धि रहेगा, तब तक उसका वास्तविक स्वरूप समझ में नहीं आयेगा। लोभ शौच धर्म (शुचिता) का आभास भी नहीं होने देगा।

लोभ और कामना से रहित होकर हम आत्मा और परमात्मा की आराधना करें – यही पवित्रता अर्थात् शुचिता है और शौच धर्म है।

लोहेण वि य मरिज्जदि, सोयेण वि य खलु अवस्स मरिज्जदि।
जदि दोहिं वि मरिस्सदि, वरं हि सोयधम्मेण मरिदव्वं।।

लोभ के होने पर भी निश्चित मरता है, शुचिता (शौच धर्म) के होने पर भी अवश्य मरता है। यदि दोनों परिस्थिति होने पर भी मरण होगा, तो उत्तम है (व्यक्ति को) उत्तम शौच धर्म पूर्वक ही मरण करना चाहिए। ***– (जिणधम्मसयगं, गाथा 97)***

पंचम दिवस (नवमी)

उत्तम-सच्चं

सच्चधम्मे य सच्चे वयणे अत्थि भेओ जिणधम्मम्मि।
पढमो वत्थुसहावो दुवे अत्थि महव्वयं साहूणं।।8।।

जिनधर्म में उत्तम सत्य धर्म और सत्य वचन में भेद है। एक (उत्तम सत्य धर्म) तो वस्तु का स्वभाव है और दूसरा (सत्य वचन) मुनियों का महाव्रत है।

उत्तम सत्य

उत्तम सत्य धर्म का वास्तविक अर्थ होता है वीतराग भाव। सत्य व्रत और सत्य धर्म में सबसे बड़ा फर्क यह है कि सत्य व्रत का संबंध वचनों तक सीमित है और सत्य धर्म सिर्फ वचनों तक सीमित नहीं है। अपने शुद्ध ज्ञान और आनंद आत्मस्वरूप की अनुभूति ही उत्तम सत्य धर्म है, जो वाणी वचन आदि इन्द्रिय और पुद्गल से परे अतीन्द्रिय स्वरूप है।

इस उत्तम सत्य धर्म की उपलब्धि उत्कृष्ट साधना करने वाले महा-तपस्वी मुनिराजों को ही हो पाती है, अतः हम उत्तम सत्य धर्म को वचनों की सत्यता के माध्यम से व्याख्यायित करते हैं।

आज सत्य धर्म को स्वीकारने और उसे आदर देना भी सीखना चाहिए। विचारणीय है कि अनेक ऋषि मुनि और महापुरुषों ने परम सत्य की प्राप्ति के लिए घर संसार को छोड़कर जंगलों में तपस्या की तो क्या 'झूठ नहीं बोलकर सत्य बोलना चाहिए' मात्र इतने लक्ष्य के लिए की थी क्या? सत्य बोलना यह सत्य महाव्रत या अणुव्रत है किन्तु परम सत्य स्वरूप अपनी आत्मा के वास्तविक स्वरूप की अनुभूति करना यह उत्तम सत्य धर्म है।

व्यवहार से भी हम देखें तो जो मनुष्य मौन व्रत मात्र ले ले तो क्या वह उत्तम सत्य धर्म का धारी हो जाएगा? क्योंकि जब वह बोल ही नहीं रहा तो झूठ और सत्य का भेद भी कहाँ रहा? इसलिए हमें उत्तम सत्य धर्म को वाणी की सत्यता से परे जाकर अवश्य सोचना चाहिए ताकि हम

इसका सही स्वरूप समझ सकें।

फिर भी वाणी की सत्यता भी एक किस्म का सत्य तो है ही। आज वास्तविकता यह है कि वस्तु के सत्य स्वरूप को हम स्वीकारते ही नहीं हैं। हम भ्रम में जीना पसंद करते हैं। उसमें रहने के इतने आदी हो गए हैं कि यथार्थ तत्त्व से सामना भी नहीं करना चाहते।

जैनदर्शन ने एक सबसे बड़े सत्य का दर्शन यह करवाया कि जीव अपने सुख-दु:ख का कर्ता-भोक्ता स्वयं है कोई और ईश्वर इस कार्य को नहीं करता है। किन्तु इस वास्तविक तथ्य से अनजान हम किसी चमत्कार की आशा में इन्हीं वीतरागस्वरूप परमात्मा की भोगों की लालसा के निमित्त भक्ति करते हैं। अपने आत्मकल्याण का पुरुषार्थ छोड़कर मिथ्या देव, शास्त्र और गुरु के चक्कर में पड़कर अपना मनुष्य भव खराब करते हैं। सबसे बड़ा सत्य यह है कि हम सत्य का सामना ही नहीं करना चाहते हैं। अपने पुराने मिथ्या भ्रमों को बरकरार रख कर चमत्कार को नमस्कार किए जा रहे हैं। मिथ्या मान्यताओं के नए नए रिकॉर्ड बना रहे हैं। सत्य धर्म का उद्घाटन करने वाले धर्म को भी अनेक क्रियाकांडों में उलझा कर उसके स्वरूप पर पर्दा डाल दिया है।

उत्तम सत्य धर्म समझने की सबसे पहली शर्त यह है कि वह हमें स्वीकार तो हो, उसकी वास्तविकता का सामना करने का हमारे पास साहस तो हो। यह योग्यता हो तो हम उसे एक दिन प्राप्त भी कर सकते हैं।

हम चाहें तो अपने जीवन में ग्रहण किए गए विपरीत अभिनिवेश अर्थात् गृहीत मिथ्यात्व को दृढ़ता पूर्वक त्याग कर हम भी उत्तम सत्य धर्म की उपासना कर सकते हैं।

णालियं जंपियव्वं परजीववहकरं सच्चवयणमवि।
सुयाणुसारेणवयं सियवायस्स य वयणमेव सच्चं।।

झूठ कभी नहीं बोलना चाहिए और ऐसा सत्य वचन भी नहीं बोलना चाहिए जिससे निर्दोष परजीवों का वध हो जाये। श्रुत के अनुसार वचन और स्याद्वाद शैली में कहे गए वचन ही सत्य वचन हैं। ***- (जिणधम्मसयगं, गाथा 44)***

षष्ठ दिवस (दशमी)

उत्तम-संजमो

संजमणमेव संजम जो सो खलु हवइ समत्ताणुभाइ।
णियाणुभवणिच्छ्येण ववहारेण पचेंदियणिरोहो।। 9।।

संयमन ही संयम है जो निश्चित ही सम्यक्त्व का अनुभावी होता है। निश्चयनय से निजानुभव और व्यवहार से पंचेन्द्रिय निरोध संयम कहलाता है।

उत्तम संयम

संयमन को संयम कहते हैं। आचार्य वीरसेन कहते हैं कि उत्तम संयम वही है जो सम्यक्त्व का अविनाभावी हो अर्थात् बिना सम्यग्दर्शन के संयम मोक्ष का कारण नहीं बनता है। आध्यात्मिक दृष्टि से अपने उपयोग को समस्त परपदार्थों से समेट कर आत्मसन्मुख करना, अपने में सीमित करना, अपने आत्मा में लगाना अर्थात् चित्त की सन्मुखता, स्वलीनता ही निश्चय संयम है। व्यवहार से पाँच इंद्रियों के विषय भोगों को नियंत्रित करना इन्द्रिय संयम और एक इन्द्रिय से लेकर पाँच इन्द्रिय तक के जीवों की रक्षा में तत्पर और जागरूक रहना प्राणी संयम है।

संयम के बिना हमारा जीवन बिना ब्रेक की गाड़ी की तरह है। जैसे कार में ब्रेक हो तो कार अन्यथा बेकार। उसी प्रकार जिसके जीवन में जरा सा भी संयम नहीं है उसका जीवन भी बेकार। सभी जन्मों में मनुष्य जन्म ही ऐसा जन्म है, जिसमें संयम धारण करने की सामर्थ्य है। इसलिए हमें मनुष्य भव का उपयोग संयम धारण करके कर लेना चाहिए।

आजकल पर्यावरण की दृष्टि से, सामाजिक दृष्टि से, राष्ट्र की दृष्टि से भी अनेक प्रकार के संयम रखने की अपील की जाती है। उन्मुक्त भोग एक बहुत बड़ी समस्या है। यह एक ऐसा रोग है जो सब कुछ तबाह कर देता है। संयम एक प्रकार का आत्मानुशासन है। लोग दूसरों पर शासन करना चाहते हैं, लेकिन खुद अनुशासित नहीं हो पाते हैं। अच्छा शासन भी

वही कर सकता है जो निज पर शासन करना जनता हो। हमें ईमानदारी से विचार करना है कि हम इन्द्रियों के दास हैं या इन्द्रियाँ हमारी दास हैं?

इन्द्रियाँ जो डिमांड करें उसे हम पूरा करते रहेंगे तो बीमार हो जायेंगे, बर्बाद हो जाएंगे। जिस दिन हम अपनी ही इन्द्रियों के मालिक बन जाएंगे उस दिन जितेंद्रिय हो जाएंगे। इन्द्रियाँ कहेंगी फिल्म देखने चलो, आप दृढ़ता से कहोगे नहीं, आप उसे सख्त आदेश देंगे भगवान् के दर्शन करने जाना है। आपका आदेश स्वीकार करके वे प्रभु दर्शन को जाएँगी। इसी प्रकार प्रत्येक इन्द्रिय आपके आदेश का पालन करेगी।

इन्द्रिय कहेगी कि मद्य मांस आदि अभक्ष्य पदार्थ में स्वाद है उसे खाओ। आप कहोगे मैं मात्र अपने स्वाद और पेट भरने के लिए किन्हीं भी प्राणी का वध नहीं कर सकता। यह संयम है, यह धर्म है। जीवन का उत्कर्ष संयम से ही आरंभ होता है।

अपनी शक्ति को छुपाए बिना, अपनी शक्ति के अनुसार यदि हम छोटा से छोटा नियम भी लें और उसे दृढ़तापूर्वक पालें तो हमारे जीवन में जो आत्मविश्वास पैदा होगा वह अद्वितीय होगा। एक छोटा-सा नियम भी बीज के समान होता है जो एक दिन बड़ा वृक्ष बन जाता। एक छोटे से संयम की शुरुआत हमें अपनी ही विस्मृत आत्मा से मुलाकात करवा सकती है, अपने मूल ज्ञायक सत् चित आनंदस्वरूप आत्मा की अनुभूति करवा सकती है क्योंकि इन्द्रियों से परे अतीन्द्रिय निज आत्मा की अनुभूति ही उत्तम संयम धर्म है। डॉ. शान्ताजी के शब्दों में -

लक्ष्य हैं मेरे अटल तो, मंजिलें निश्चित मिलेंगी।
बो दिया है बीज तो फिर, क्यारियाँ निश्चित खिलेंगी।।

संजमेण वि मरिज्जदि, असंजमेण वि य अवस्स मरिज्जदि।
जदि दोहिं वि मरिस्सदि, वरं संजमधम्मेण मरिदव्वं।।

*संयम के होने पर भी निश्चित मरता है, असंयम के होने पर भी अवश्य मरता है। यदि दोनों परिस्थिति होने पर भी मरण होगा, तो उत्तम है (व्यक्ति को) उत्तम संयमधर्म पूर्वक ही मरण करना चाहिए। - **(जिणधम्मसयगं, गाथा 98)***

सप्तम दिवस (एकादशी)

उत्तम-तवो

इच्छाणिरोहो तवो कम्मखवट्ठं सगरूपायरणं।
णियबहितवो भेयेण तेसु झाणं परमतवोद्दिट्ठं।। 10।।

इच्छा का निरोध तप है, कर्म क्षय के लिए अपने स्वरूप में रमण करना तप है। तप छह अन्तरंग और छह बहिरंग के भेद से बारह प्रकार का होता है उनमें भी ध्यान को परम तप कहा गया है।

उत्तम तप

इच्छा के निरोध को तप कहते हैं। आध्यात्मिक दृष्टि से समस्त राग और द्वेष के त्याग पूर्वक अपने शुद्ध आत्म स्वभाव में लीन होना उत्तम तप है। व्यावहारिक दृष्टि से अनशन व्रतादि तप हैं। जैनदर्शन में तप और तपस्या को बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। भोगवादी दृष्टिकोण वाले मनुष्य हमेशा दु:खी ही रहते हैं। इसके विपरीत जो जीवन में स्वयं ही तप को अपनाता है, उसे कौन दु:खी कर सकता है?

अपनी इच्छाओं को वश में रखना ही सबसे बड़ा तप है। जैनदर्शन कहता है इच्छाएँ आज तक कभी भी किसी की पूरी नहीं हुई। जब तक हम इच्छाओं के दास हैं, तब तक पूर्णता को प्राप्त नहीं कर सकते। स्वर्ग के देवों के पास तप करने की शक्ति नहीं है, वे चाह कर भी तप को धारण नहीं कर पाते हैं। मनुष्य तप पूर्वक कर्मों के वज्र शिखर भी नष्ट कर देता है।

स्वाध्याय और ध्यान को उत्कृष्ट तप कहा गया है। ज्ञान और ध्यान के बिना मुक्ति संभव ही नहीं है। जैन आचार्यों ने अज्ञानी के तप को बाल तप की संज्ञा दी है। आचार्य कुंदकुंद ने तो यहाँ तक कहा है कि कोई मनुष्य सम्यक्त्व से रहित होकर करोड़ों वर्षों तक भी बहुत उग्र तप करे तो भी वह बोधि को प्राप्त नहीं कर पाता है।

जिस प्रकार अग्नि में तप कर सोने के सभी दोष नष्ट हो जाते हैं उसी प्रकार तपस्या से आत्मा के सभी कर्मों का नाश हो जाता है और वह अपने शुद्ध स्वरूप का अनुभव करने लगती है। जैनदर्शन के अनुसार दूसरों के द्वारा किया गया तप खुद को जरा सा भी लाभ नहीं पहुँचाता है। जिसे कर्मों को नाश करके अतीन्द्रिय आत्मसुख को प्राप्त करना है, उसे स्वयं ही तप करना पड़ेगा। उसमें भगवान् भी केवल मार्ग बतलाते हैं, चलना आपको स्वयं ही पड़ेगा।

जैन संस्कृति को श्रमण संस्कृति इसीलिए कहा गया क्योंकि यहाँ श्रम अर्थात् पुरुषार्थ अर्थात् स्वयं की गई तपस्या को ही कार्यकारी माना गया है।

कर्मों की अदालत में, भ्रष्टाचार नहीं चलता।
करे कोई भरे कोई, ये अनाचार नहीं पलता।। – (स्वरचित)

जैन दृष्टि से भगवान् आपको मोक्ष का सिर्फ रास्ता दिखाते हैं, आपको मोक्ष दिला नहीं सकते। उसके लिए स्वयं ही उग्र पुरुषार्थ करना पड़ेगा। इसीलिए जैन परंपरा में उपवास आदि का महत्त्व बहुत ज्यादा है और इसकी विधि भी बहुत शुद्ध, प्रामाणिक और कठिन है। स्वर्ग के देव भी तप करने की इच्छा रखते हैं क्योंकि कर्मों का वज्र पहाड़ उसके बिना ढह नहीं सकता। इसलिए हम सभी को शास्त्रोक्त विधि से निज शक्ति के अनुसार तप अवश्य करना चाहिए। कहा भी है –

तप चाहैं सुरराय करम शिखर को वज्र है।
द्वादशविध सुखदाय, क्यों न करैं निज सकति सम।।

कम्मखयं णिज्जरा य होइ य तववेरग्गभावणादो।
झाणेण होइ सिग्घं तम्हा णियसुद्धप्पा झायव्वो।।
कर्मों का क्षय निर्जरा है, जो तप और वैराग्य भावना से होती है, ध्यान से निर्जरा शीघ्र होती है, अतः निज शुद्धात्मा ध्यान करने योग्य है।
– (जिणधम्मसयगं, गाथा 63)

अष्टम दिवस (द्वादशी)

उत्तम-चागं

सगवत्थुणं य दाणं चागपरदव्वेसु रागाभावो।
णाणचागो ण होदि य भेयणाणं अत्थि पच्चक्खाणं।।11।।

स्व वस्तुओं का दान होता है और पर वस्तुओं में रागद्वेष का अभाव त्याग है। निश्चित ही ज्ञान का त्याग नहीं होता है (जबकि दान होता है) और वास्तव में परद्रव्यों से भेदज्ञान होना ही प्रत्याख्यान (त्याग) है।

उत्तम त्याग

जो मनुष्य सम्पूर्ण परद्रव्यों से मोह छोड़कर संसार, देह और भोगों से उदासीन रूप परिणाम रखता है, उसके उत्तम त्याग धर्म होता है। सच्चा त्याग तब होता है, जब मनुष्य परद्रव्यों के प्रति होने वाले मोह, राग, द्वेष को छोड़ देता है।

यद्यपि शास्त्रों में प्रेरणा के लिए व्यवहार से दान को ही त्याग कहा गया है। किन्तु त्याग और दान में सबसे बड़ा और महत्त्वपूर्ण अंतर यह है कि त्याग हमेशा बुराई का किया जाता है और दान हमेशा उत्कृष्ट पदार्थ का किया जाता है। राग, द्वेष, मिथ्यात्व और अज्ञान का त्याग तो हो सकता है , दान नहीं। इसी प्रकार ज्ञान का दान हो सकता है, त्याग नहीं। दान हमेशा स्व और पर के उपकार के लिए किया जाता है। पैसे का त्याग पूर्वक दान होता है। अगर हम उसे त्यागेंगे नहीं तो देंगे कैसे ?

वर्तमान में धर्म के क्षेत्र में भी धन का महत्त्व ज्यादा है इसलिए त्याग धर्म को दान धर्म के रूप में ही समझा और समझाया जाता है।

जैन शास्त्रों में भी मुख्य रूप से दान के चार प्रकार ही वर्णित हैं -

1. आहार दान
2. औषधि दान
3. ज्ञान दान
4. अभय दान

इसमें भी धन दान का कहीं कोई जिक्र नहीं है किन्तु उक्त में से तीन की व्यवस्था धन के माध्यम से ही होती है, अतः आज धन का दान ही दान समझा जाने लगा है। धन के दान में सबसे बड़ी समस्या उसके दुरुपयोग की है। जैसे किसी भूखे ने भोजन माँगा तो हमने उसे भोजन के स्थान पर कुछ रुपयों का दान कर दिया। उन रुपयों से यदि उसने शराब माँस आदि का सेवन कर लिया तो दोष दाता को भी लगेगा। इसलिए पात्र व्यक्ति को उपकरण, भोजन आदि का साक्षात् दान देना श्रेष्ठ है। यदि कोई इलाज के लिए पैसे माँगे तो खुद दवाई खरीद कर देना और उसका इलाज कराना श्रेष्ठ है।

सच्चे मोक्षमार्गी को जो दान दिया जाता है, वह मोक्ष का कारण बनता है। आज दान के नए रूपों की भी आवश्यकता है जैसे श्रम दान, समय दान आदि। आज लोग धार्मिक कार्य के लिए पैसा जितना चाहे देने को तैयार हैं किन्तु समय और श्रम देना बहुत मुश्किल हो रहा है। इसलिए भलाई के काम में जो धन नहीं दे पा रहा है, किन्तु समय दे रहा है और ईमानदारी से श्रम कर रहा है वह भी उस पुण्य का उतना ही हकदार है जितना धन देने वाला।

जगत् में धन की तीन ही गतियाँ मानी गईं हैं – दान, भोग और नाश। यदि आपने मेहनत और ईमानदारी से कमाए धन का दान या भोग नहीं किया तो अंत में उसका नाश ही होता है।

भ्रष्टाचार, बेईमानी और पाप से संचित धन को यदि धर्म के कार्य में लगाया जाता है तो उसके भी दुष्परिणाम धर्म की हानि के रूप में हम साक्षात् देखते हैं। इसलिए जैन शास्त्रों में साधन शुद्धि पर बहुत बल दिया गया। साधन शुद्ध होंगे तो साध्य भी शुद्ध होंगे।

दान करने की भावना नहीं होना भी धन के प्रति बहुत आसक्ति का सूचक है। दान करने वाला सर्वप्रथम उक्त पदार्थ या धन के प्रति आसक्ति का त्याग करता है। इसलिए आम जन को समझाने के लिए त्याग को दान

कह दिया जाता है। इस प्रकरण में कारण में कार्य का उपचार करके कथन किया गया है।

हमें स्वयं तो दान देना ही चाहिए अपने बच्चों को भी धर्मस्थल के गुल्लकों में रोज कुछ दान करने का अभ्यास करवाना चाहिए। उनके यह संस्कार उनके धर्म की वृद्धि में सहायक बनेंगे।

गृहस्थ के छह आवश्यक कार्यों में दान प्रतिदिन का कर्त्तव्य कहा गया है। अतः यथा शक्ति बिना किसी विज्ञापन की लालसा के मेहनत और ईमानदारी का धन आदि उचित पदार्थ थोड़ा बहुत भी जो मनुष्य पात्र जीव को दान करता है वह इस लोक में भी यश प्राप्त करता है और उसका परलोक भी उत्कृष्ट बनता है।

वर्तमान में ऐसे लोग बहुत कम हैं, जो अपने सुख का त्याग करके भी दूसरों को सुखी देखना चाहते हैं। यह त्याग धर्म तो मनुष्य के मोक्षमार्ग का बहुत बड़ा कारण है ही साथ ही संसार में, समाज में, परिवार में भी शांतिपूर्ण जीवन जीने की कला सिखाता है। हमें त्याग में आनन्द मानने वाला त्यागानन्दी बनना चाहिए।

त्यागधर्म शुद्ध भाव है, दान हमारा शुभभाव।
पहला खुद पर उपकार है, दूजा परोपकार।।

– (स्वरचित)

चागाणन्दो य जत्थ, तत्थ विवाओ ण हवइ परिवारे।
जो सहइ सो खलु वसइ, लोही य असहणसीला ण वसंति।।

त्याग में आनंद मानने वाला (त्यागानंद नामक व्यक्ति) जिस घर में रहता है उस परिवार में कभी विवाद नहीं होता। (परिवार में एक साथ रहने का नियम है कि) जो सहता है वह रहता है। लोभी और असहनशील व्यक्ति परिवार में एक साथ नहीं रहते।

– जिणधम्मसयगं, गाथा-78

नवम दिवस (त्रयोदशी)

उत्तम-आकिंचण्हं

परकिंचिवि मज्झ णत्थि भावणाकिंयण्हं गणहरेहिं।
अंतबहिगंथचागो अणासत्तो हवइ अप्पासयेण।। 12।।

परपदार्थ कुछ भी मेरा नहीं है - ऐसी भावना ही उत्तम आकिंचन्य धर्म है - ऐसा गणधरों के द्वारा कहा गया है। अन्तरंग और बहिरंग परिग्रहों का त्याग और उनके प्रति अनासक्ति आत्मा के आश्रय से उत्पन्न होती है।

उत्तम आकिंचन्य

'यह मेरा है' इस प्रकार के अभिप्रायरूप ममत्व का त्याग करना आकिंचन्य है। जिसका कुछ नहीं है वह आकिंचन्य है। आध्यात्मिक दृष्टि से समस्त पर- पदार्थ और पर के लक्ष्य से आत्मा में उत्पन्न होने वाले मोह-राग-द्वेष के भाव आत्मा के नहीं हैं - इस प्रकार जानकर और मानकर अपनी शुद्ध आत्मा के आश्रय से मोह-राग-द्वेष छोड़ना ही उत्तम आकिंचन्य धर्म है।

व्यवहार से सभी प्रकार के अंतरंग और बहिरंग परिग्रहों का त्याग करना आकिंचन्य धर्म है। शास्त्रों में मूर्छा अर्थात् आसक्ति को परिग्रह कहा गया है। अल्प परिग्रह का धारी जीव ही पुनः मनुष्य भव को प्राप्त कर पाता है - 'अल्पारम्भपरिग्रहत्वं मानुषस्य' - (त.सू. 6/7)। इसके विपरीत शास्त्रों में यह भी कहा गया है कि बहुत परिग्रह का भाव नरकगति का कारण बनता है - 'बह्वारम्भपरिग्रहत्वं नारकस्यायुषः' - (त.सू. 6/15)।

अंतरंग में मिथ्यात्व (मिथ्या दृष्टिकोण) सबसे बड़ा परिग्रह है और अन्य सभी परिग्रहों का यह सबसे बड़ा कारण है। आचार्य कुंदकुंद कहते हैं कि बाह्य परिग्रहों का त्याग भावों की विशुद्धि के लिए किया जाता है इसलिए मिथ्या भाव, राग-द्वेष के त्याग के बिना मात्र बाह्य परिग्रह का त्याग निष्फल हो जाता है।

अधिक परिग्रह दु:ख का सबसे बड़ा कारण है। आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का संग्रह हमें परेशानी में डाल देता है। हम उसमें ही उलझे रहते हैं, अपनी शुद्धात्मा का ध्यान ही नहीं कर पाते हैं। किसी कवि ने ठीक ही कहा है –

आगाह अपनी मौत से कोई वशर नहीं।
सामान सौ बरस का पल की खबर नहीं।।

बाह्य परिग्रह के साथ सबसे बड़ा भ्रम यह है कि उसे हम पुण्य का फल मानकर उसमें बहुत आसक्त हो जाते हैं, जबकि परिग्रह तो पाँच पापों में एक 'पाप' है। हम धर्म के फल के रूप में भी अधिक परिग्रह की ही कामना करने लगे हैं, जबकि यह 'कामना' स्वयं में बहुत बड़ा पाप है।

हम जरूरत से ज्यादा बेजान वस्तुओं और मशीनों से घिरे हुए एक ऐसे चेतन हो गए हैं, जो अपने स्वभाव और आनंद को भूल कर इन्हीं अचेतन पदार्थों में ही सुख खोज रहा है। इस प्रतियोगिता में हमने अपने अन्य चेतन साथियों को भी भुला दिया है, जो ज्ञान और दर्शन की प्रेरणा देते हैं।

पैसा और अन्य बेजान सुविधा प्रदान करने वाली वस्तुएँ हमें उपयोग करने के लिए मिली थीं, लेकिन हम उनसे प्रेम करने लगे हैं। अन्य चेतन साथी हमें प्रेम और सद्भाव के लिए मिले, लेकिन हम उनका उपयोग करने लगे हैं।

अचेतन से प्रेम और चेतन का उपयोग आज के युग की सबसे बड़ी विडम्बना बन गया है। पैसे जैसे अचेतन पदार्थ के लिए किसी जीव को दु:ख पहुँचाना, उसे परेशान करना अब हमें अनैतिक नहीं लगता है।

यह तो साफ है कि जिस वस्तु के प्रति हमारी जितनी ज्यादा आसक्ति रहेगी उसके वियोग में उतना ही ज्यादा दु:ख होगा। अत: दु:ख कम करने का सबसे आसान तरीका यह है कि आसक्ति खत्म नहीं कर सकते तो सीमित अवश्य की जाए।

इसका प्रबंधन इस प्रकार किया जा सकता है कि प्रथम वस्तुएँ उतनी ही रखी जाएँ, जितनी उपयोगी हों और अनावश्यक वस्तुओं को या तो जरूरतमंदों को दान दे दिया जाय या छोड़ दिया जाय। जिन अचेतन वस्तुओं का परिग्रह है उनसे ज्यादा मोह न रखा जाये। उन पर 'यूज एंड थ्रो' की मान्यता रखी जाए।

जो पति, पत्नी, बच्चे, नौकर आदि चेतन परिग्रह हैं, उनसे भी ज्यादा आसक्ति न रखकर मात्र अनासक्त प्रेमभाव रखकर यथा शक्ति अपने कर्त्तव्य की ईमानदारी से पूर्ति की जाये। ये जीवन जीने की कला है। अपने आनंदस्वरुप शुद्ध स्वभाव को विस्मृत करके यदि हम सदैव पर भावों में रहेंगे तो आकिंचन्य उत्पन्न ही नहीं होगा।

जिसप्रकार आँख हमेशा दूसरों को देखती है। दूसरे की आँख में छोटा से छोटा कीड़ा भी चला जाये तो उसे देखकर दूर कर देती है, किन्तु उसी आँख में स्वयं कंकड़ भी डला हो तो वह उसे देख नहीं पाती। उसीप्रकार हमारी भी हालत है, हमें पराई वस्तुओं की जानकारी तो पूरी रहती है। किन्तु स्वयं को जानने की या तो फुर्सत ही नहीं है या उसके लिए भी पर का सहारा लेना पड़ता है -

बाहर की दुनिया में हम इतने मस्त हैं।
खुद से मिलने की सभी लाइनें व्यस्त हैं।। - (स्वरचित)

इसलिए जगत का क्षणभंगुर स्वरूप समझकर, अनित्य भावना पूर्वक हम संसार में निर्वहन करेंगे तो आसक्ति विकसित ही नहीं होगी और हम आकिंचन्य बने रहेंगे।

अप्पसहावो गच्छइ ण कया खलु मत्त गच्छइ विहावो।
जो गच्छइ सो य ण मम जो मम सो ण गच्छइ खलु सहावो।।
आत्मा का मूल शुद्ध स्वभाव कभी नहीं जाता, निश्चित ही मात्र विभाव जाता है और जो चला जाता है वह मेरा नहीं है और जो मेरा है वह जाता नहीं है, निश्चय से वही मेरा स्वभाव है। ***- (जिणधम्मसयगं , गाथा 47)***

दशम दिवस (अनंत चतुर्दशी)

उत्तम-बंभचय्यं

बंभणि चरणं बंभं जीवो विमुक्कपरदेहतित्तिस्स।
विवरीयलिंगेसु खलु आसत्ति कारणं य भवदुक्खस्स।।13।।

जीव का परदेह की सेवा से रहित होकर अपनी शुद्ध आत्मा में रमण करना ब्रह्मचर्य है। निश्चितरूप से विपरीत लिंग में आसक्ति ही भव दु:ख का मूलकारण है।

उत्तम ब्रह्मचर्य

परद्रव्यों से नितांत भिन्न शुद्ध-बुद्ध अपने आत्मा अर्थात् ब्रह्म में लीनता ही उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म है। ब्रह्मचर्य व्रत को सभी व्रतों में श्रेष्ठ व्रत कहा गया है। मुनि इसे महाव्रत के रूप में तथा गृहस्थ इसे अणुव्रत के रूप में पालते हैं।

इन्द्रियों के विषयों का सेवन करते रहने से अपने अतीन्द्रिय आत्मस्वरूप का अनुभव नहीं हो पाता है। इन्द्रिय विषयों में आसक्ति अब्रह्मचर्य है। दो में से एक कार्य ही संभव है या तो इन्द्रिय भोग या ब्रह्मलीनता। जो पाँच इंद्रियों में लीन है, वह आत्मा में लीन नहीं है, जो आत्मा में लीन है, वह पाँच इंद्रियों में लीन नहीं है। हम यह कह सकते हैं कि पंचेंद्रिय विषयों से निवृत्ति नास्ति से और आत्मलीनता अस्ति से ब्रह्मचर्य धर्म की परिभाषा है।

मुख्य रूप से स्पर्श इन्द्रिय के विषयों में स्वयं को संयमित रखने को ब्रह्मचर्य इसलिए कहा जाता है क्योंकि यह इन्द्रिय सबसे व्यापक है और शेष चार इन्द्रियाँ भी किसी न किसी रूप में इससे संबंधित हैं।

व्यवहार से गृहस्थ जीवन में धर्म एवं समाज द्वारा स्वीकृत, विवाह संस्कार द्वारा प्राप्त जीवन साथी के साथ संतोष रखना तथा अन्य समस्त व्यभिचारी प्रवृत्तियों से दूर रहना ब्रह्मचर्य अणुव्रत है।

शास्त्रों में शील की रक्षा का बहुत वर्णन किया गया है। स्त्री पुरुष दोनों को ही शील की मर्यादा का पालन करते हुए धर्म मार्ग में सदैव

तत्पर रहना चाहिए। वर्तमान समाज में शील और मर्यादा को पिछड़ापन समझा जा रहा है, उन सभी निमित्त को स्वीकृति प्राप्त हो रही है, जो मान मर्यादा भंग करने में तत्पर रहते हैं।

शील की मर्यादा के अभाव में परिवार टूट रहे हैं, अविश्वास का वातावरण समाज को खंडित कर रहा है। ऐसे संसाधन सहज उपलब्ध हैं, जो बाल मन में भी कामुकता का बीज वपन कर रहे हैं। सारा संसार कामुकता को पुरुषार्थ समझ रहा है। असंयमित और उन्मुक्त भोग ही एक मात्र लक्ष्य माना जा रहा है। पवित्र समझे जाने वाले कुछ अनैतिक साधु भी जब इस कलंक से वंचित नहीं हैं, तब सामान्य गृहस्थों की तो बात ही क्या?

हम इसके दुष्परिणाम भी भोग रहे हैं लेकिन चेत नहीं रहे हैं। ऐसे विकट समय में ब्रह्मचर्य की शास्त्रसम्मत किन्तु वर्तमान समय के अनुकूल व्यावहारिक परिभाषा की आवश्यकता है। यह समझने की आवश्यकता है कि बिना आत्मलीनता के बाह्य ब्रह्मचर्य भी कोरा व्रत मात्र है जिसका कोई आध्यात्मिक धरातल नहीं है, मात्र वासनाओं को दबाना बड़ा विस्फोटक हो जाता है।

वासना का अभाव ही उत्तम ब्रह्मचर्य की परिधि में आता है। वासना की संतुलित और संयमित परिणति अणुव्रत के अन्तर्गत आती है। वासनाओं को दबाना और वासनाओं से दबना दोनों ही असहज अवस्था है।

ब्रह्मचर्य एक धर्म है, वह दिखावा या सम्मान का लालसी नहीं है। वह एक ऐसी आत्मिक अतीन्द्रिय अनुभूति है, जहाँ इन्द्रिय सुख की समस्त अनुभूतियाँ स्वतः ही तुच्छ लगने लगती हैं।

बंभसरूवो अप्पा तस्सिं रमणं अत्थि बंभचय्यं।
परसंगविरमणं खलु ववहारेण हवइ य बंभचय्यं।।

आत्मा ब्रह्म स्वरूप है उसमें रमण ही ब्रह्मचर्य है और व्यवहार से पर जीव के स्पर्श से विरत होना ही ब्रह्मचर्य होता है। – ***(जिणधम्मसयगं, गाथा 46)***

खमा-पव्वं

जीवा खमंति सव्वे खमादिणे य जायंति सव्वाओ।
'मिच्छा मे दुक्कडं' य बोल्लंति वेरमज्झं ण केण वि।।14।।

क्षमा दिवस पर जीव सभी जीवों को क्षमा करते हैं और सबसे (क्षमा) याचना करते हैं। (वे) कहते हैं - मेरे दुष्कृत्य मिथ्या हों तथा मेरा किसी से भी बैर नहीं है।

क्षमावाणी पर्व

जैन परंपरा में दशलक्षण महापर्व के ठीक एक दिन बाद एक महत्त्वपूर्ण पर्व मनाया जाता है वह है - क्षमापर्व। इस दिन श्रावक (गृहस्थ) और साधु दोनों ही वृहद् प्रतिक्रमण करते हैं। पूरे वर्ष में उन्होंने जाने या अनजाने यदि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के किसी भी सूक्ष्म से सूक्ष्म जीव के प्रति कोई भी अपराध किया हो तो उसके लिए वह उनसे क्षमा याचना करता है। अपने दोषों की निंदा करता है और कहता है - 'मिच्छा मे दुक्कडं' अर्थात् मेरे सभी दुष्कृत्य मिथ्या हो जाएँ। वह प्रायश्चित्त भी करते हैं। इस प्रकार वह क्षमा के माध्यम से अपनी आत्मा से सभी पापों को दूर करके, उनका प्रक्षालन करके सुख और शांति का अनुभव करते हैं। श्रावक प्रतिक्रमण में प्राकृत भाषा में एक गाथा है -

खम्मामि सव्वजीवाणं, सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ती मे सव्वभूदेसु, वेरं मज्झं ण केण वि।।

अर्थात् मैं सभी जीवों को क्षमा करता हूँ सभी जीव मुझे क्षमा करें। मेरा प्रत्येक जीव के प्रति मैत्री भाव है, किसी के प्रति वैर भाव नहीं है।

क्षमा आत्मा का स्वभाव है, किन्तु हम हमेशा क्रोध को स्वभाव मान कर उसकी स्वीकारोक्ति और अनिवार्यता पर बल देते आये हैं। क्रोध को यदि स्वभाव कहेंगे तो वह आवश्यक हो जायेगा। इसीलिए क्रोध को विभाव कहा गया है स्वभाव नहीं। क्षमा क्षम शब्द से बना है, जिससे

क्षमता भी बनता है। क्षमता का मतलब होता है सामर्थ्य और क्षमा का मतलब है किसी की गलती या अपराध का प्रतिकार नहीं करना, सहन करने की प्रवृत्ति यानि माफी क्योंकि क्षमा का अर्थ सहनशीलता भी है। क्षमा कर देना बहुत बड़ी क्षमता का परिचायक है। बदला लेने का क्रूर आनन्द कुछ क्षण का होता है, किन्तु क्षमा करने का शान्तिपूर्ण आनन्द जीवन भर का होता है। इसीलिए नीति में कहा गया है – **'क्षमावीरस्य भूषणं'** अर्थात् क्षमा वीरों का आभूषण है।

प्राय: लोग सहन शक्ति को कमजोरी समझते हैं, लेकिन आध्यात्मिक अर्थों में सहनशीलता एक विशेष गुण है, जो कमजोर लोगों में पाया ही नहीं जाता। भौतिक विज्ञान का एक प्रसिद्ध नियम है कि हर क्रिया की प्रतिक्रिया होती है। अध्यात्म विज्ञान में प्रतिक्रिया कुछ है ही नहीं, सिर्फ क्रिया है। क्षमा क्रिया है, क्रोध प्रतिक्रिया है। हम अक्सर प्रतिक्रिया में जीते हैं। क्रिया को भूल जाते हैं। सम्यक् क्रिया धर्म है और मिथ्या प्रतिक्रिया अधर्म है। हम मिथ्या प्रतिक्रियावादी इसलिए हैं, क्योंकि हममें सहनशीलता नहीं है।

बहुत महत्त्वपूर्ण शब्द है 'सहन'। एक बार सुनने में ऐसा लगता है जैसे हमें कोई डरने को कह रहा है या दबकर चलने को कह रहा है। किन्तु बात वैसी है नहीं जैसा हम समझ रहे हैं। बातचीत में हम अक्सर पूछा करते हैं कि उनका रहन-सहन कैसा है? खासकर विवाह हेतु लड़का या लड़की देखते समय यह जरूर पूछा जाता है। आमजन रहन-सहन का अर्थ करते हैं सिर्फ आर्थिक स्तर, स्टैण्डर्ड यानि कि वो कितना महँगा पहनते हैं, कितना महँगा खाते हैं, कितने बड़े मकान या कोठी में रहते हैं। आपके घर में बेजान वस्तुओं का कितना भंडार है? यह अर्थ हमारी भोग प्रधान दृष्टि ने निकाला है।

हम विचार करें कि रहन के साथ सहन शब्द भी है। विवाह योग्य लड़की के लिए दोनों चीजें देखना जरूरी हैं कि लड़के वाले कैसे रहते हैं और कैसे सहते हैं, रहन के साथ-साथ उनके सहन का स्तर भी यदि

नाप लिया जाये तो कभी धोखे में नहीं रहेंगे। परिवार, समाज और राष्ट्र की पूरी व्यवस्था और समन्वय इसी आधार पर टिका है। परिवार टूटा - इसका अर्थ है सह नहीं पाए, किसी सदस्य की सहनशीलता कमजोर हो गयी। दूसरी असहनशीलता अन्य सदस्यों की कि वे एक की असहनशीलता को सह नहीं पाए। इसके पीछे स्नेह का अभाव छुपा हुआ है। हम जिसके प्रति प्रेम करते हैं उसकी हर गुस्ताखी को सह जाते हैं और जब प्रेम नहीं होता तो छोटी-सी बात भी सहन नहीं होती। रहन-सहन में से अंत का 'न' हटा दें तो बचेगा 'रह-सह' और इसे पलट दें तो हो जायेगा 'सह-रह' और इस सूत्र का अर्थ होगा कि जो सहे सो रहे और जो न सहे सो न रहे। सहनशीलता सह-अस्तित्व की सूचक है, जो बिना क्षमा के, क्षमता के कथमपि संभव नहीं है।

दश धर्मों की आध्यात्मिक और व्यावहारिक दोनों दृष्टि से आराधना करने के अनंतर आत्मा समस्त बुराइयों को दूर करके परम पवित्र और शुद्ध स्वरूप प्रगट कर लेती है, तब मनुष्य अंदर से इतना भीग जाता है कि उसे अपने पूर्वकृत अपराधों का बोध होने लगता है। अपनी भूलें एक-एक कर याद आने लगती हैं। लेकिन अब वह कर क्या सकता है? काल के पूर्व में जाकर उनका संशोधन करना तो अब उसके वश में नहीं है। अब इन अपराधों का बोझ लेकर वह जी भी तो नहीं सकता। जो हुआ सो हुआ, लेकिन अब क्या करें? कैसे अपने अपराधों की पुरानी स्मृतियाँ मिटा सकूँ, जो मेरी वर्तमान शांति में खलल डालती हैं।

ऐसी स्थिति में तीर्थंकर भगवान् महावीर ने एक सुंदर आध्यात्मिक समाधान बतलाया - 'पडिक्कमणं' (प्रतिक्रमण) अर्थात् जो पूर्व में तुमने अपनी मर्यादा का अतिक्रमण किया था उसकी स्वयं आलोचना करो और वापस अपने स्वभाव में आ जाओ। यह कार्य तुम स्वयं ही कर सकते हो, कोई दूसरा नहीं।

प्रतिक्रमण करके तुम अपनी ही अदालत में स्वयं बरी हो सकते हो तुम उन अपराधों को दुबारा नहीं करोगे ऐसा नियम लोगे तो वह

'पचक्खाण' अर्थात् प्रत्याख्यान हो जाएगा। प्रत्याख्यान शब्द का अर्थ है ज्ञान पूर्वक त्याग। जो जाने अनजाने किया उसका प्रतिक्रमण और आगे से नहीं करेंगे उसका प्रत्याख्यान। भगवान् महावीर ने प्रायश्चित करने को आत्मशुद्धि का सबसे बड़ा कारण कहा।

'भाद्र शुक्ला चतुर्दशी के बाद आश्विन कृष्णा एकम् को क्षमावाणी पर्व विश्व मैत्री दिवस के रूप में' इसलिए मनाया जाता है कि हम सबसे पहले अपने प्रति अन्य से हुए अपराधों के लिए उन्हें क्षमा का दान करके भार मुक्त हो जाएँ और फिर उनके प्रति अपने द्वारा किए गए अपराधों की क्षमा याचना करके स्वयं भी शुद्ध हो जाएँ और अन्य को भी भार मुक्त होने का अवसर प्रदान करें।

अव्वल तो किसी से बैर धारण करना ही नहीं चाहिए और यदि हो गया है तो उसे ज्यादा दिन संभाल कर नहीं रखना चाहिए। ये बैर एक ऐसा वायरस है, जो आपकी आत्मा के सारे सॉफ्टवेयर और सिस्टम को करप्ट कर देगा। इसलिए क्षमा का एंटीवायरस अपने भीतर हमेशा इंस्टॉल रखें और बीच बीच में बैर का वायरस रिमूव करते रहें।

एंटीवायरस एक साल की वैलिडिटी के आते हैं इसलिए दशलक्षण पर्व के एक दिन बाद क्षमावाणी पर्व उसका नया वर्जन अपडेट करने के लिए मिलता है।

हमें जिनसे क्षमा याचना करनी है उनसे कहेंगे नहीं तो उन्हें पता कैसे चलेगा कि हम क्षमा माँग रहे हैं अतः हार्डवेयर की भी जरूरत है इसलिए 'वाणी' शब्द का प्रयोग किया गया है।

'क्षमावाणी' – उत्तम क्षमा का व्यावहारिक रूप है। वचनों से अपने मन की बात को कहकर जिनसे बोलचाल बन्द है, उनसे भी क्षमा याचना करके बोलचाल प्रारंभ करना अनंत कषाय को मिटाने का सर्वोत्तम साधन है।

संवादहीनता जितना बैर को बढ़ाती है उतना कोई और नहीं। अतः चाहे कुछ भी हो जाए संवाद का मार्ग कभी भी बंद न होने दें। संवाद बचा

रहेगा तो सभी संभावनाएँ जीवित रहेंगी। सिर्फ सोशल मीडिया पर मैसेज न करें। अपनी वाणी से साक्षात् या फोन करके कहें – तभी क्षमावाणी होगी अन्यथा इसका नाम बदल जाएगा और इसे 'क्षमा मैसेज पर्व' कहना पड़ेगा।

और सिर्फ कोरा कहें ही नहीं बल्कि हृदय से माँगें तभी क्षमा दाता को पानी-पानी कर पाएँगे और उस क्षमा नीर में स्वयं भी भीग पाएँगे।

क्षमा-क्षमा सब कोई कहें, क्षमा करे नहीं कोय।
क्षमा कर दिया जाय तो, भव-भव भ्रमण न होय।।

हम लोग वर्ष में अनेक दिवस मनाते हैं जैसे विश्व अहिंसा दिवस, विश्व योग दिवस आदि उसी प्रकार हम सभी मनुष्यों को विश्व क्षमा दिवस भी अवश्य मनाना चाहिए।

अभिधम्मसारो

धारइ जो दसधम्मो पंचमयाले णियसत्तिरूवेण।
सो अणिंदियाणंदं लहइ 'अणेयंत' सरूवं अप्पं।।15।।

इस विषम पंचमकाल में भी जो इन दस धर्मों को यथाशक्ति धारण करता है, वह अतीन्द्रिय आनंद और अनेकांत स्वरूपी आत्मा को प्राप्त करता है।

पंचमकाल धर्म की आराधना में कैसे भी बाधक नहीं है। उन जीवों के लिए कोई भी काल धर्म में बाधक नहीं होता है, जो स्वकाल में रहते हैं। जैनधर्म कभी भी जबरदस्ती का धर्म नहीं रहा, यहाँ तो प्रत्येक कार्य में 'यथाशक्ति' शब्द का प्रयोग किया गया है, जिसका अर्थ है अपनी क्षमता को न छुपाते हुए, क्षमता के अनुसार दान, त्याग, संयम, व्रत, पूजा, तप आदि धर्म क्रियायें अवश्य करना चाहिए और क्षमता से बाहर जाकर जबरदस्ती कुछ भी नहीं करना चाहिए। आज भी जो सामर्थ्यानुसार दस धर्म को धारण करेगा, वह आत्मिक आनन्द को अवश्य प्राप्त करेगा – ऐसा मेरा विश्वास है और यही मंगलकामना भी है। इत्यलम्। ♦♦♦

दशलक्षण धर्म आराधना

(पं. द्यानतरायजी कृत)

(अनुष्टुप) स्थापना (संस्कृत)

उत्तमक्षान्तिकाद्यन्त-ब्रह्मचर्य-सुलक्षणम्।
स्थापयेद्दशधा धर्ममुत्तमं जिनभाषितम्।।

(अनुष्टुप) स्थापना (हिन्दी)

उत्तम छिमा मारदव आरजव भाव हैं,
सत्य शौच संयम तप त्याग उपाव हैं।
आकिंचन ब्रह्मचरज धरम दस सार हैं,
चहुँगति-दुःखतैं काढ़ि मुकति करतार हैं।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इति आह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

(सोरठा)

हेमाचल की धार, मुनि-चित सम शीतल सुरभि।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्याणीति दश-लक्षणधर्माय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन केशर गार, होय सुवास दशों दिशा।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय संसारतापविनाशनाय चंदनं नि. स्वाहा।

अमल अखण्डित सार, तन्दुल चन्द्र समान शुभ।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् नि. स्वाहा।

फूल अनेक प्रकार, महकें ऊरध-लोकलों।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

नेवज विविध निहार, उत्तम षट्-रस संजुगत।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्मांगाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

बाति कपूर सुधार, दीपक-ज्योति सुहावनी।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्मांगाय मोहांधकारविनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

अगर धूप विस्तार, फैले सर्व सुगन्धता।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्मांगाय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं नि.।

फल की जाति अपार, घ्रान-नयन-मन-मोहने।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्मांगाय मोक्षफलप्राप्तये फलं नि. स्वाहा।

आठों दरब संवार, द्यानत अधिक उछाह सौं।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्मांगाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

अङ्गपूजा

(सोरठा)

पीड़ैं दुष्ट अनेक, बाँध मार बहुविधि करैं।
धरिये छिमा विवेक, कोप न कीजै पीतमा॥

उत्तम छिमा गहो रे भाई, इह-भव जस पर भव सुखदाई।
गाली सुनि मन खेद न आनो, गुन को औगुन कहै अयानो॥
कहि है अयानो वस्तु छीनै, बाँध मार बहुविधि करै।
घर तैं निकारै तन विदारै, वैर जो न तहाँ धरै॥
तैं करम पूरब किये खोटे, सहै क्यों नहिं जीयरा।
अति क्रोध-अगनि बुझाय प्रानी, साम्य-जल ले सीयरा॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमामाधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मान महाविषरूप, करहि नीच-गति जगत में।
कोमल सुधा अनूप, सुख पावै प्रानी सदा॥
उत्तम मार्दव गुन मन माना, मान करन कौ कौन ठिकाना।
वस्यो निगोद माहिं तैं आया, दमरी रूकन भाग बिकाया॥
रूकन बिकाया भागवश तैं, देव इक-इन्द्री भया।
उत्तम मुआ चाण्डाल हूवा, भूप कीड़ों में गया॥
जीतव्य जोवन धन गुमान, कहा करै जल-बुदबुदा।
करि विनय बहु-गुन बड़े जन की, ज्ञान का पावै उदा॥

ॐ ह्रीं उत्तममार्दवधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कपट न कीजै कोय, चोरन के पुर ना बसै।
सरल सुभावी होय, ताके घर बहु सम्पदा॥
उत्तम आर्जव रीति बखानी, रंचक दगा बहुत दुःखदानी।
मन में होय सो वचन उचरिये, वचन होय सो तनसौं करिये॥
करिये सरल तिहुँ जोग अपने देख निरमल आरसी।
मुख करै जैसा लखै तैसा, कपट-प्रीति अँगारसी॥
नहिं लहै लछमी अधिक छल करि, करम-बन्ध विशेषता।
भय त्यागि दूध बिलाव पीवै, आपदा नहिं देखता॥

ॐ ह्रीं उत्तमआर्जवधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कठिन वचन मति बोल, परनिन्दा अरु झूठ तज।
साँच जवाहर खोल, सतवादी जग में सुखी॥
उत्तम सत्य-बरत पालीजै, पर-विश्वासघात नहिं कीजै।
साँचे-झूठे मानुष देखो, आपन पूत स्वपास न पेखो॥
पेखो तिहायत पुरुष साँचे को दरब सब दीजिये।
मुनिराज-श्रावक की प्रतिष्ठा साँच गुण लख लीजिये॥
ऊँचे सिंहासन बैठि वसु नृप, धरम का भूपति भया।
वच झूठ सेती नरक पहुँचा, सुरग में नारद गया॥

ॐ ह्रीं उत्तमसत्यधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

धरि हिरदै सन्तोष, करहु तपस्या देह सौं।
शौच सदा निरदोष, धरम बड़ो संसार में॥
उत्तम शौच सर्व जग जाना, लोभ पाप को बाप बखाना।
आशा-पास महा दुःखदानी, सुख पावै संतोषी प्रानी॥
प्रानी सदा शुचि शील जप तप, ज्ञान ध्यान प्रभाव तैं।
नित गंग जमुन समुद्र न्हाये, अशुचि-दोष सुभाव तैं॥
ऊपर अमल मल भर्‌यो, भीतर, कौन विधि घट शुचि कहै।
बहु देह मैली सुगुन-थैली, शौच-गुन साधु लहै॥

ॐ ह्रीं उत्तमशौचधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

काय छहों प्रतिपाल, पंचेन्द्री मन वश करो।
संजम-रतन सम्भाल, विषय-चोर बहु फिरत हैं॥
उत्तम संजम गहु मन मेरे, भव-भव के भाजैं अघ तेरे।
सुरग-नरक-पशुगति में नाहीं, आलस-हरन करन सुख ठाहीं॥
ठाहीं पृथी जल आग मारुत, रूख त्रस करुना धरो।
सपरसन रसना घ्रान नैना, कान मन सब वश करो॥
जिस बिना नहिं जिनराज सीझे, तू रूल्यो जग-कीच में।
इक घरी मत विसरो करो नित, आव जम-मुख बीच में॥

ॐ ह्रीं उत्तमसंयमधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तप चाहैं सुरराय, करम-शिखर को वज्र है।
द्वादशविधि सुखदाय, क्यों न करै निज सकति सम॥
उत्तम तप सब माँहि बखाना, करम शैल को व्रज समाना।
बस्यो अनादि निगोद मँझारा, भू विकलत्रय पशु तन धारा॥
धारा मनुष तन महादुर्लभ, सुकुल आव निरोगता।
श्री जैनवानी तत्त्वज्ञानी, भई विषय पयोगता॥
अति महादुरलभ त्याग विषय-कषाय जो तप आदरैं।
नर-भव अनूपम कनक घर पर, मणिमयी कलसा धरैं॥

ॐ ह्रीं उत्तमतपोधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दान चार परकार, चार संघ को दीजिए।
धन बिजुली उनहार, नर-भव लाहो लीजिए॥
उत्तम त्याग कह्यो जग सारा, औषध शास्त्र अभय आहारा।
निहचै राग-द्वेष निरवारै, ज्ञाता दोनों दान सँभारै॥
दोनों सँभारे कूप-जल सम, दरब घर में परिनया।
निज हाथ दीजे साथ लीजे, खाय खोया बह गया॥
धनि साधु शास्त्र अभय दिवैया, त्याग राग विरोध को।
बिन दान श्रावक साधु दोनों, लहैं नाहीं बोध को॥

ॐ ह्रीं उत्तमत्यागधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

परिग्रह चौबिस भेद, त्याग करैं मुनिराजजी।
तिसना भाव उछेद, घटती जान घटाइए॥
उत्तम आकिञ्चनगुण जानो, परिग्रहचिन्ता दुःख ही मानो।
फाँस तनक-सी तन में सालै, चाह लँगोटी की दुःख भालैं॥
भालै न समता सुख कभी नर, बिना मुनि-मुद्रा धरैं।
धनि नगन पर तन-नगन ठाड़े, सुर-असुर पायनि परैं।।
घर माहिं तिसना जो घटावै, रुचि नहीं संसार सौं।
बहु धन बुरा हू भला कहिये, लीन पर उपगार सौं॥

ॐ ह्रीं उत्तमआकिञ्चन्यधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शील-बाढ़ नौ राख, ब्रह्म-भाव अन्तर लखो।
करि दोनों अभिलाख, करहु सफल नरभव सदा॥
उत्तम ब्रह्मचर्य मन आनौ, माता बहिन सुता पहिचानौ।
सहैं बान-वरषा बहु सूरे, टिकै न नैन-बान लखि कूरे॥
कूरे तिया के अशुचि तन में, काम-रोगी रति करैं।
बहु मृतक सड़हि मसान माहीं, काग ज्यों चोंचैं भरैं॥
संसार में विष-बेल नारी, तजि गये जोगीश्वरा।
'द्यानत' धरम दश पैड़ि चढ़ि कैं, शिव-महल में पग धरा॥

ॐ ह्रीं उत्तमब्रह्मचर्यधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

समुच्चय जयमाला

(दोहा)

दश लच्छन वन्दौं सदा, मनवांछित फलदाय।
कहों आरती भारती, हम पर होहु सहाय॥

(वेसरी छन्द)

उत्तम छिमा जहाँ मन होई, अन्तर-बाहिर शत्रु न कोई।
उत्तम मार्दव विनय प्रकासै, नाना भेदज्ञान सब भासै॥

उत्तम आर्जव कपट मिटावै, दुरगति त्यागि सुगति उपजावै।
उत्तम सत्य-वचन मुख बोलै, सो प्रानी संसार न डोलै॥

उत्तम शौच लोभ-परिहारी, सन्तोषी गुण-रतन भण्डारी।
उत्तम संयम पालै ज्ञाता, नर-भव सफल करै ले साता॥

उत्तम तप निरवांछित पालै, सो नर करम-शत्रु को टालै।
उत्तम त्याग करै जो कोई, भोगभूमि सुर-शिवसुख होई॥

उत्तम आंकिचन व्रत धारै, परम समाधि दशा विसतारै।
उत्तम ब्रह्मचर्य मन लावै, नर-सुर सहित मुकति-फल पावै॥

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्येति दश-लक्षणधर्माय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

करै करम की निरजरा, भव पींजरा विनाश।
अजर अमरपद को लहैं, 'द्यानत' सुख की राश॥

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

उत्तम-खम मद्दउ अज्जउ सच्चउ, पुणु सउच्च संजमु सुतउ।
चाउ वि आकिंचणु भव-भय-वंचणु, बंभचेरु धम्मु जि अखउ।।

संसार का भय दूर करने वाले उत्तम क्षमा, मार्दव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य ये अविनाशी दश धर्म हैं।

- (रइधू)

लेखक परिचय

प्रो. डॉ. अनेकान्त कुमार जैन

शिक्षा - एम.ए. (जैन विद्या एवं तुलनात्मक धर्मदर्शन), जैनदर्शनाचार्य, पी-एच.डी, NET/JRF

माता-पिता - श्रीमती डॉ. मुन्नीपुष्पा जैन-प्रो. डॉ. फूलचन्द जैन प्रेमी, वाराणसी

प्रकाशन -

- **ग्रन्थ प्रणयन और संपादन**
  1. षड्दर्शनेषु प्रमाणप्रमेय समुच्चयः (संस्कृत पाण्डुलिपि संपादन)
  2. संवेग चूडामणि (प्राकृत पाण्डुलिपि संपादन एवं अनुवाद)
  3. जैनधर्म एक झलक (जैनधर्म, दर्शन और संस्कृति को सरलता से समझाने वाली मौलिक कृति)
  4. सत्प्ररूपणासार (शोध पूर्ण संपादन)
  5. अहिंसा दर्शन : एक अनुचिंतन (मौलिक कृति)
  6. दार्शनिक समन्वय की जैन दृष्टि : नयवाद (शोध प्रबंध)
  7. प्रवचनसार - आचार्य कुन्दकुन्द, टीका - ब्र. शीतलप्रसादजी (संपादन)
  8. श्रमण आवश्यक निर्युक्ति (संस्कृत टीका सहित) (सह-संपादन)
  9. Women in Jainism (Co-Writer)
  10. भारतीयदर्शनेषु स्याद्वादः (शोध निबंध संग्रह, सह-संपादन)
  11. प्राकृत भाषा - कम्प्यूटर और विज्ञान (प्रकाशनाधीन-मौलिक कृति)
  12. प्रमेयकमलमार्तण्डसारः (आचार्य प्रभाचन्द्रकृत बृहद् ग्रन्थ का संक्षेपीकरण, संपादन एवं हिंदी व्याख्या)
  13. The Concept of Naya in Jainism (Monograph)
  14. जिणधम्मसयगं (प्राकृत पद्यात्मक मौलिक रचना)
  15. पागद-भासा, महामत्थयाहिसेगो विशेषांक (संपादन)
  16. दसधम्मसारो (प्राकृत पद्यात्मक मौलिक रचना)
- लगभग 70 शोधपत्र, राष्ट्रिय/अन्ताराष्ट्रिय शोध-पत्रिकाओं में हिन्दी, संस्कृत तथा अंग्रेजी भाषा में प्रकाशित।
- विभिन्न राष्ट्रिय समाचार-पत्रों, पत्रिकाओं में धर्म-संस्कृति तथा सम-सामयिक विषयों पर लगभग 300 लेख, कवितायें और कहानियाँ प्रकाशित।
- 'पागद-भासा' नामक प्राकृत भाषा की प्रथम पत्रिका के मानद संपादक तथा अनेक पत्र-पत्रिकाओं के संपादक मंडल के सदस्य।

प्रमुख पुरस्कार/उपाधियाँ/सम्मान -

1. महर्षि वादरायण व्यास युवा राष्ट्रपति पुरस्कार, 2. महावीर पुरस्कार, 3. शास्त्रिपरिषद पुरस्कार, 4. विद्वत्परिषद पुरस्कार, 5. कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार, 6. अर्हत्वचन पुरस्कार, 7. जैन सिद्धांत भास्कर, 8. युवा वाचस्पति, 9. अहिंसा इन्टरनेशनल अवार्ड, 10. दिल्ली सरकार द्वारा श्रेष्ठ शिक्षक सम्मान आदि।

प्रमुख योगदान -

1. देश/विदेश में लगभग पचास राष्ट्रिय/अन्तर्राष्ट्रिय सेमिनारों में जैनधर्म, दर्शन, इतिहास, संस्कृति, साहित्य और प्राकृत आगमों से संबंधित शोध-पत्र प्रस्तुत।

2. सभा संचालन/प्रखरवक्ता/दूरदर्शन, आकाशवाणी केन्द्र तथा टीवी चैनलों में इंटरव्यू/वार्ता।

3. स्क्रिप्ट लेखन/काव्य-कहानी लेखन, ब्लॉग लेखन, ऑनलाइन शिक्षण।

4. आध्यात्मिक प्रवचनकार, दशलक्षण पर्व पर प्रवचनार्थ यात्रायें।

5. प्राकृत-संस्कृत भाषा का प्रचार-प्रसार, संरक्षण एवं संवर्धन।

6. जैन ध्यान योग, तनाव प्रबंधन, मोटिवेशनल आदि कार्यशालाओं के विशेषज्ञ।

7. जापान तथा ताइवान में विदेश मंत्रालय द्वारा आयोजित सर्वधर्म अन्तर्राष्ट्रिय सम्मेलन में भारत से जैनधर्म का प्रतिनिधित्व। केन्या में अंतरराष्ट्रीय सेमिनार।

8. विश्वविद्यालय द्वारा संचालित जैन विद्या सर्टिफिकेट एवं डिप्लोमा कोर्स के संस्थापक संयोजक।

9. राष्ट्रिय मूल्याङ्कन एवं प्रत्यायन परिषद (NAAC) के टीम सदस्य, कई विश्वविद्यालय एवं कॉलेज मूल्यांकित। विश्वविद्यालय विद्वत्परिषद् के सदस्य।

10. श्रवणबेलगोला महामस्तकाभिषेक के अवसर पर 2006 में आयोजित अखिल भारतीय जैन विद्वत्सम्मेलन के सह-संयोजक एवं 2017 में आयोजित अखिल भारतीय संस्कृत विद्वत्सम्मेलन के संयोजक। अनेक राष्ट्रीय संगोष्ठियों के संयोजक।

11. जिन फाउण्डेशन पुस्तकालय (2000 ग्रन्थ) का संचालन।

सम्प्रति -

आचार्य एवं अध्यक्ष - जैनदर्शनविभाग, दर्शन संकाय, श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विश्वविद्यालय, कुतुबसांस्थानिक क्षेत्र, नई दिल्ली-110016

सम्पर्क-सूत्र - जिन फाउण्डेशन, A93/7A, नन्दा हास्पिटल के पीछे, छत्तरपुर एक्सटेंशन, नई दिल्ली-110074, मो. 9711397716

Email - drakjain2016@gmail.com Twitter - @Anekant76

Facebook page - Profanekantkumarjain/

डॉ. अनेकांत को महर्षि वादरायण व्यास युवा राष्ट्रपति सम्मान से सम्मानित करते हुए राष्ट्रपति

लेखक की प्रमुख कृतियाँ

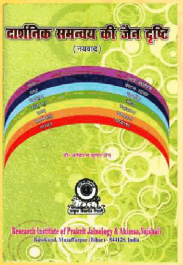

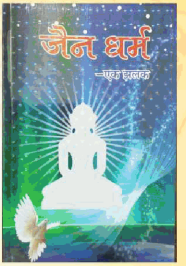

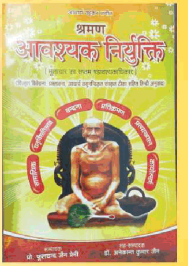

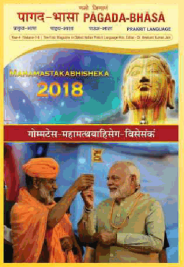

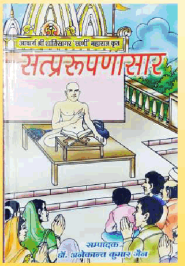

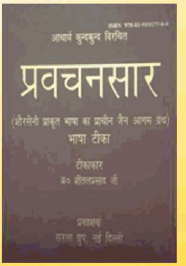

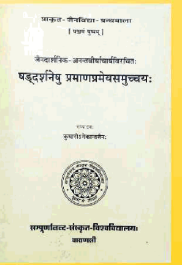

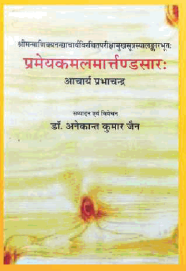

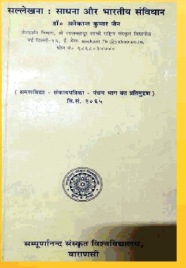

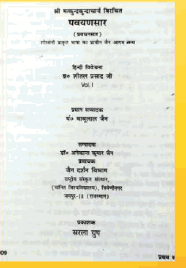

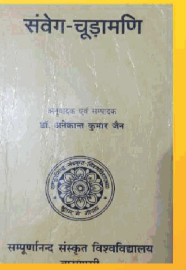

इसी पुस्तक से...

- वास्तव में धर्म के मामले में हमें अपने प्रति ईमानदार होने की बहुत आवश्यकता है ,यह दशलक्षण पर्व इसी तरह के आत्मानुसंधान (Self Research) के लिए जीवन में आते हैं। हम किसी मत, संप्रदाय, पंथ के पोषण में और लोकेषणा के चक्कर में अपना यह दुर्लभ मनुष्य भव बर्बाद नहीं कर सकते क्योंकि यह दुर्लभ मनुष्य भव, भव के अभाव करने के लिए मिला है, अन्य कार्य अब उतने महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। (पृष्ठ 12)
- दूसरों की गलती की सजा खुद को देने का नाम क्रोध है। (पृष्ठ 15)
- मान कषाय से युक्त मनुष्य को यह पता नहीं होता कि वह मानी है, यह दूसरों को पता लगता है जो उनसे पीड़ित होते हैं। (पृष्ठ 16–17)
- माया के कारण हम समाज में एक मुखौटा लगा कर जी रहे हैं। रोज मुखौटे बदलते हैं। मुखौटे पहनने के इतने आदी हो गए हैं कि हमारा असली चेहरा क्या है हम वो भी भूल चुके हैं। (पृष्ठ 19)
- जो धर्म हमें लोभ त्यागने की शिक्षा देता है, उस धर्म की पालना भी हम यदि किसी लौकिक लोभ के वशीभूत होकर करें तो यह कितना विसंगतिपूर्ण होगा? (पृष्ठ 21)
- सबसे बड़ा सत्य यह है कि हम सत्य का सामना ही नहीं करना चाहते हैं। अपने पुराने मिथ्या भ्रमों को बरकरार रख कर चमत्कार को नमस्कार किए जा रहे हैं। मिथ्या मान्यताओं के नए नए रिकॉर्ड बना रहे हैं। सत्य धर्म का उद्घाटन करने वाले धर्म को भी अनेक क्रियाकांडों में उलझा कर उसके स्वरूप पर पर्दा डाल दिया है। (पृष्ठ 23)
- इन्द्रियाँ जो डिमांड करें उसे हम पूरा करते रहेंगे तो बीमार हो जायेंगे, बर्बाद हो जाएंगे। जिस दिन हम अपनी ही इन्द्रियों के मालिक बन जाएंगे उस दिन जितेंद्रिय हो जाएंगे। (पृष्ठ 25)
- भोगवादी दृष्टिकोण वाले मनुष्य हमेशा दुःखी ही रहते हैं। इसके विपरीत जो जीवन में स्वयं ही तप को अपनाता है उसे कौन दुःखी कर सकता है ? (पृष्ठ 26)
- आज दान के नए रूपों की भी आवश्यकता है जैसे श्रम दान, समय दान आदि। आज लोग धार्मिक कार्य के लिए पैसा जितना चाहे देने को तैयार हैं किन्तु समय और श्रम देना बहुत मुश्किल हो रहा है। इसलिए भलाई के काम में जो धन नहीं दे पा रहा है किन्तु समय दे रहा है और ईमानदारी से श्रम कर रहा है वह भी उस पुण्य का उतना ही हकदार है जितना धन देने वाला। (पृष्ठ 29)
- हम जरूरत से ज्यादा बेजान वस्तुओं और मशीनों से घिरे हुए एक ऐसे चेतन हो गए हैं जो अपने स्वभाव और आनंद को भूल कर इन्हीं अचेतन पदार्थों में ही सुख खोज रहा है। (पृष्ठ 32)
- दो में से एक कार्य ही संभव है या तो इन्द्रिय भोग या ब्रह्मलीनता। जो पाँच इंद्रियों में लीन है वह आत्मा में लीन नहीं है जो आत्मा में लीन है वह पांच इंद्रियों में लीन नहीं है। (पृष्ठ 34)
- ये बैर एक ऐसा वायरस है जो आपकी आत्मा के सारे सॉफ्टवेयर और सिस्टम को करप्ट कर देगा। इसलिए क्षमा का एंटीवायरस अपने भीतर हमेशा इंस्टॉल रखें और बीच–बीच में बैर का वायरस रिमूव करते रहें। एंटीवायरस एक साल की वैलिडिटी के आते हैं इसलिए दशलक्षण पर्व के एक दिन बाद क्षमावाणी पर्व उसका नया वर्जन अपडेट करने के लिए मिलता है। (पृष्ठ 39)

68638
9 780978 819095